श्री श्वे० स्था० जैन स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा का ४६वां पुष्प

卐

सोहन काव्य-कथा मंजरी

卐

प्रकाशक :
श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ
गुलाबपुरा-३११०२१ (राज.)

रचनाकार :
स्वाध्याय-शिरोमणि, आचार्यप्रवर
श्रद्धेय सोहनलालजी म.सा.

सोहन काव्य कथा मंजरी
भाग ९
सोलह चरित्रों का संग्रह

रचनाकार :
आचार्यप्रवर, श्रद्धेय,
गुरुवर्य श्री सोहनलालजी म. सा.

सम्पादक :
डॉ. शशिकर 'खटका राजस्थानी'
एम.ए. पी-एच.डी.

प्रथम संस्करण
अगस्त १९९६

मूल्य :
लागत मूल्य १६ रुपये

अर्थ सौजन्य :
श्रीमान् शोभागमलजी सा. संचेती
लीडी (अजमेर)

मुद्रक :
मंगल मुद्रणालय
महावीर सर्किल, गंज, अजमेर
फोन : २३६२६/३०३२६

प्रकाशक :
श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ
गुलाबपुरा (राज.)

प्रकाशकीय

साहित्य की विधाओं में कथा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि स्वयं मानव-सृष्टि। जब दो व्यक्ति मिलते हैं एवं परस्पर कुशल-क्षेम के समाचार पूछते हैं, तब वे अपनी कहानी ही कहते हैं या सुनाते हैं। यही कहानी का उद्‌गम स्रोत है।

तब से अब तक इस कहानी ने एक लम्बी दूरी की यात्रा तय की है। कथा से कहानी, फिर लघुकथा व बोधकथा के रूप में विकसित होकर अब वह अ-कहानी की सीमा को स्पर्श करने लगी है।

किसी भी आयु के व्यक्ति के लिए कहानी सुनना या पढ़ना आनन्ददायक होता है। अपने देश में ही दादी-नानी के द्वारा कहानी कहने-सुनने की परम्परा चली आ रही है। शिक्षितों और अशिक्षितों में समान रूप से कहानी की विधा लोकप्रिय है। विविध घटनाक्रम के साथ संजोए गए पात्रों के गतिमान जीवन के माध्यम से मानो पाठक अपने ही जीवन की कहानी पढ़ता है। वह घटना भी अपनी बात कहकर पाठक के मन में निराकार रूप से पैठकर उसे आन्दोलित करती रहती है अतः उसकी अनुगूंज तो लम्बे समय तक सुनाई पड़ती रहती है। इस प्रकार कहानी जीवन से जुड़कर जीवन मूल्यों की समृद्धि का माध्यम बनती है।

कथा का मूल आधार घटना का चमत्कार होता है तथा घटना-चमत्कार किसी धार्मिक, नैतिक या साहसिक मूल्य की स्थापना करता है। अति प्राचीनकाल में लिखी गई पंचतंत्र, हितोपदेश, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि की कथाएं नीति की शिक्षा प्रदान करने वाली रही हैं जिससे व्यक्ति व समाज के जीवन को एक दिशा मिली है। इनमें वर्णित व्यक्ति एकाकी न होकर सम्पूर्ण समाज के एक प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होता है इसलिए पाठक उसके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर पाते हैं। यद्यपि कथा का प्रस्थान बिन्दु व्यक्ति है किन्तु गन्तव्य तो समाज ही होता है।

इस कथा-शिल्प के साथ यदि काव्यात्मकता का भी मधुर मेल हो जाय तो सोने में सुगन्ध आ जाती है गेयत्व का मेल होने के कारण, माधुर्य में अभिवृद्धि होने से उसकी प्रभावशीलता द्विगुणित होकर पाठक के मन पर स्थायी असर कर जाती है।

प्रस्तुत काव्यात्मक कथा-संकलन के कथाशिल्पी विद्वद्वरेण्य, परमश्रेष्ठ, मधुरवक्ता आशुकवि आचार्यप्रवर, गुरुवर्य श्री सोहनलालजी म. सा. एक ऐसे ही अमर कथाकार हैं जिन्होंने अपनी कथाओं के माध्यम से तर्कजाल की भांति उलझे हुए मनुष्य के मन की समस्याओं को सुलझाया है, सांसारिक व्यामोह से उसे मुक्तकर मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति से उसे सम्पन्न बनाया है और इस प्रकार स्वस्थ, अनासक्त एवं समर्पित व्यक्ति का तथा शुद्ध आचार वाले समाज का निर्माण किया है।

वि. सं. २०४४ का वर्ष श्री स्वाध्यायी संघ के आद्य-संस्थापक, राजस्थान-केसरी, श्रद्धेय गुरुवर्य श्री पन्नालालजी म.सा. का जन्मशती वर्ष था। इसी समय, हमारी आस्था के केन्द्र स्वाध्याय-शिरोमणि श्रद्धेय गुरुवर्य आचार्य श्री सोहनलालजी म. सा. ने अपने जीवन के ७७वें वसन्त में प्रवेश कर अपने महिमा-मंडित जीवन से हमें गौरवान्वित किया है। इसी वर्ष पूज्य गुरुवर्य द्वारा समुपदिष्ट श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ गुलाबपुरा ने भी अपनी स्थापना के ५० वर्ष पूरे किए हैं। इस प्रकार यह त्रिवेणी-संगम हम सभी के लिए परम हर्ष का विषय रहा है।

पूज्य गुरुदेव के अनुयायी भक्तों की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनके अब तक के प्रकाशित व अप्रकाशित काव्यात्मक कथानकों को—जो लगभग ३०० से भी अधिक हैं—क्रमश: प्रकाशित कराया जाय ताकि पाठक उनसे समुचित लाभ उठा सकें एवं साहित्य के अनुसंधित्सुओं के लिए भी पथचिह्न बन सकें। वर्तमान दूषित वातावरण में युवकों को सत्साहित्य उपलब्ध नहीं होने से वे घटिया एवं चरित्रहन्ता साहित्य पढ़कर अपना समय नष्ट करते हैं। उन्हें भी व्यवहार व धर्मनीतिपरक साहित्य सुलभ कराना भी इसका एक उद्देश्य रहा है।

इसी भावना के अनुसार पूज्य गुरुदेव श्री द्वारा रचित कथानकों को क्रमश: प्रकाशित करने की योजना बनी। इस योजनान्तर्गत सोहन काव्य कथा मंजरी के ८ भाग अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। जिन्हें सुधी पाठकों ने एवं सन्त-सतियों व स्वाध्यायी बन्धुओं ने काफी सराहा है। इसका यह नवम् पुष्प पाठकों को समर्पित करते हुए परम हर्ष है।

इस संकलन को संपादित कर तैयार करने में हमें कविवर श्री डॉ. शशिकर 'खटका राजस्थानी' का पूरा-पूरा सहयोग मिला है। इसके लिए उनके प्रति हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं। डॉ. शशिकर जी स्वयं एक सिद्धहस्त कवि हैं। राजस्थान में अतिरिक्त सुदूर दक्षिण प्रदेश में भी पहुँचकर आपने अपनी कविताओं का रसास्वादन कराया है। विजयनगर निवासी होने के कारण श्रद्धेय गुरुदेव श्री के निकट रहकर उनके अन्तर को देखने—समझने का आपको सदैव अवसर मिलता रहा है इसलिए आपके सम्पादन में स्वाभाविकता है, भाव सौन्दर्य की सुरक्षा आपने बखूबी की है। आपके सम्पादन-कौशल के प्रति हार्दिक स्नेह युक्त आभार।

इसका प्रकाशन श्रीमान् शोभागमलजी सा. संचेती लीडी निवासी (जिला अजमेर) के अर्थ सौजन्य से संभव हो सका है उनके प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। आपकी उत्कृष्ट गुरुभक्ति एवं जिन शासन-सेवा की अनुकरणीय भावना के प्रति हार्दिक आभार।

आशा है पाठकगण इस काव्य कथामाला से लाभ प्राप्तकर जीवन में नैतिकता विकसित कर सकेंगे, इसी विश्वास से—

नेमीचन्द खाबिया
मंत्री
श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी संघ
गुलाबपुरा

गुलाबपुरा
दि. १ अगस्त १९९६

धर्मप्रेमी, सुश्रावक

श्रीमान् शोभागमलजी सा. संचेती



श्रीमान् लाड़ूलालजी सा. संचेती के सुपुत्र श्रीमान् शोभागमलजी सा. संचेती धार्मिक निष्ठावान आदर्श सुश्रावक थे। 25 वर्षों से भी अधिक समय तक आप अपने ग्राम लीड़ी में सरपंच के पद पर रहे एवं गांव के चतुर्मुखी विकास

आमुख

मनीषियों ने कविता को जीवन की व्याख्या कहा है यह सत् की प्रेरणा प्रदान करने में सक्षम होती है। मानव जन्म से कभी बुरा नहीं होता। सांसारिक वातावरण में आकर ही वह अच्छा बुरा बनता है। मानव की भावना सदैव सदाचार, सद्धर्म एवं सुप्रवृत्तियों की ओर अग्रसर होती है। अनाचार, अधर्म एवं दुष्प्रवृतियों से उसे घृणा होती है। स्वार्थ, लोभ, मोह के जाल में फँसकर वह अवगुणों की छाँव में जीने लगता है। कविता एक ऐसा दीपक है जो मानव को सत् का साक्षात्कार कराती है। असत्-अंधकार के अघ में फंसा जीव सत् के उजाले को देख नहीं पाता। यदि उसे एक पल के लिए ही जीवन में उजाला मिल जाये तो उसके सहारे जीव मुक्ति की राह जान लेता है। वह सत् से परिचित होकर उसकी तलाश में निर्भय होकर चल देता है, भोग के पीछे छुपी भयानकता को पहचान कर योग मार्ग की ओर वह अग्रसर हो जाता है।

सन्तों का जीवन सदैव भोग से हटकर योग की ओर बढ़ता है। सच्चे सुख को समझ करके योगी संसार को भी उसी ओर अग्रसर करने की प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। वे सभी को असत् से सत्, अशिव से शिव, असुन्दर से सुन्दर, अंधकार से उजाले की ओर लाने हेतु जीवन पर्यन्त संघर्ष करते हैं। आज मानवीय जीवन मूल्यों का निरन्तर पतन होता जा रहा है। सन्तों, साहित्यकारों एवं समाजसेवियों के समक्ष बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है कि क्या किया जाये? मांझी तूफान को देखकर स्वयं नौका से नहीं कूदता बल्कि वह कूल की ओर बढ़ने के प्रयास तेज करने लगता है। यही स्थिति आज समाज एवं राष्ट्र के कर्णधारों के सामने हैं।

आचार्य श्री सोहनलाल जी म. स्थानकवासी जैन परम्परा के मूर्धन्य-मनीषी सन्त हैं। धर्म, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व को उन्होंने अच्छी तरह अनुभव करके उसका निर्वाह कर रहे हैं। संत के साथ-साथ साहित्यकार होने से उन्होंने जितना परम्पराओं का निर्वाह किया उतना ही वर्तमान का भी सहृदयता से सम्मान किया है। समाज एवं राष्ट्र की बदलती हुई स्थिति को देखकर उनका कवि हृदय कराह उठता है। कलम सद्प्रेरणा प्रदान करने वाले शब्द उगलने लगती है। अतीत की अच्छाई को वर्तमान यदि स्वीकार ले तो भविष्य अवश्य सुनहरा बनता है। यही भावना आचार्य श्री की सदैव रही है। आप लोक संत हैं लोक भाषा व लोक संगीत के प्रति आप श्री की सदैव अभिरुचि रही है। जो विचारों से भावना से एवं वेशभूषा मे सरल एवं सहज हैं, वे भला अपनी भाषा में दुरूहता कैसे स्वीकारेंगे। आपके शब्दों में पाण्डित्य का बोझ

नहीं बल्कि प्रेम भरी प्रभु की प्रार्थना है, तर्क वितर्क से हटकर जीवनानुभूति की सुनहरी रश्मियां हैं। आप धर्म गुरु के साथ-साथ सद्गुरु भी हैं। त्याग के पथ पर चलते हुए युग को दिशा बोध देने में आप अहर्निश संलग्न हैं।

कहानी बालक, युवा एवं वृद्ध सभी को प्रिय लगती है। हमारा प्राचीन साहित्य काव्य में ही लिखा गया है। काव्य जब दुरुह लगने लगा तो गद्य ने अपने पाँव पसारने शुरू कर दिये। आचार्य श्री ने प्राचीन एवं अर्वाचीन की बोध परक कथा-कहानी को काव्य का स्वरूप देने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। आप आशुकवि हैं। जन भाषा के शब्दों को लोक संगीत की शैली में उतारकर नवीन ढंग से प्रस्तुत कर आप द्वारा भारतीय वाङ्‌मय में जो अभिवृद्धि हुई वह वन्दनीय है।

सोहन काव्य कथा मञ्जरी का अवलोकन एवं अध्ययन करके मेरे अन्तर को सुकून मिला है। राजस्थानी लोक संगीत में लावणी एक प्रसिद्ध राग है। उसी के ऊपर विभिन्न छोटी-बड़ी कथाओं को काव्य में परिणत कर हिन्दी की महती सेवा आचार्य प्रवर ने की है। प्रस्तुत कृति की कथाएं भले ही प्राचीन हैं मगर कवि का समग्र ध्यान वर्तमान को भूल नहीं पाता। कवि का मूल उद्देश्य वर्तमान को सुधारना है। सरल-सुबोध शैली में रचित ये काव्य कथाएं पाठक के गले में सहज ही उतरती जाती हैं। जन सामान्य की बोलचाल की भाषा का प्रयोग करने वाला कवि ही लोक मान्य कवि बन सकता है। आचार्य श्री स्वयं में सौ प्रतिशत लोक कवि हैं। बोलचाल की भाषा होने के कारण काव्य में हिन्दी व राजस्थानी के साथ-साथ उर्दू शब्दों का भी सहज प्रयोग मिल जाता है। ऐसा लगता है कवि ने कविता बनाई नहीं बल्कि सागर से मोती के समान निकली है, यही कारण है कि काव्य में नजूमी, नज़र, गजब, बदसूरत, जुल्म, हमदर्दी, गद्दारी जैसे शब्द सहज में ही आ गये हैं। काव्य के अनुरूप काव्य कथाओं में मुहावरों का प्रयोग भी कहीं-कहीं दिखाई देता है। पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर आवश्यकता होने पर प्राचीन संस्कृत श्लोक भी कथाओं में आये हैं लेकिन उनसे काव्य कथा के आगे बढ़ने में कोई बाधा नहीं आई है।

कवि युग सत्य से आँखें नहीं मीचता। वर्तमान युग में नशाखोरी की आदत समाज को पतन के गर्त में गिरा रही है। कवि ने लिखा है—

नशा नाश को दे आवाज बुलाये।
नशा खोर का भाग्य बदल ना पाये।

निरक्षरता मानव के लिए अभिशाप है, यह जानकर लिखा है—

अनपढ़ मानव पशुवत् जीवन जीता।
घूँट जहर का रह रह करके पीता।

राजकुमारी चन्द्रमुखी समाज में ज्ञान का प्रचार करने हेतु स्वयं लोगों को पढ़ाती है—

अनपढ़ लोगों को घर में बैठ पढ़ाये।
जीवन की महत्ता उनको नित्य बताये।।

युद्ध को मानवता का सबसे बड़ा खतरा मानते हुए कवि ने लिखा है -

जन धन का विनाश युद्ध में होता।
पिता मरे तो पुत्र हमेशा रोता।।

आज के बिगड़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण के प्रति भी कवि सजग है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण नगरों का जीवन नारकीय होता जा रहा है। कवि चन्द्रमुखी के माध्यम से वन्य जीवन के लिए कहता है—

भीड़भाड़ से दूर वृक्षों की छाया।
वन का वातावरण मुझे तो भाया।।

काव्य मञ्जरी की सभी कथाएँ जहाँ एक ओर रोचकता को समेटे हुए हैं वहीं उसमें प्रेम, दया, करुणा, वात्सल्य, भाईचारा समाज सेवा का महान् सन्देश है। प्रत्येक कथा कोई न कोई संदेश देकर पाठक को सोचने के लिए विवश करती है। काव्य मञ्जरी की सौरभ अन्तर को अन्दर तक सुवासित करने में सक्षम है। आचार्य श्री के काव्य कथा सरोवर की उर्मियों से स्वयं को भिगोकर मन धन्य धन्य हो उठा है। अन्त में मेरा कवि मन बोल उठता है—

मानव भव को पाकर के मन को नित चैतन्य किया।
आचार्य श्री तुमने अपने जीवन को हाँ धन्य किया।
काव्य कथा की मञ्जरियों से सौरभ चहुँ दिश फैली,
कलम उठा हे महामुनि सचमुच मसि को पुण्य दिया।।

डॉ. शशिकर 'खटका राजस्थानी'
एम.ए., पी.एच. डी.

२० मई १९९६
कवि कुटीर
बिजयनगर (अजमेर)

अनुक्रमणिका



१ | धूप-छाँव

[तर्ज : लावणी]

यह चरित्र रसीला पढ़ो-सुनो नर नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥
आदर्श नगर का राज्य बड़ा ही भारी।
नृप विक्रम करता राज्य महागुणधारी।
न्याय नीति में चतुर बहुत उपकारी।
लगती उसको प्रजा प्राण से प्यारी।
कार्य प्रजा के लिए करे हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ १॥
महारानी विमला भी पतिव्रत की धारी।
नित चले पति की आज्ञा के अनुसारी।
पति हित का वह ध्यान रखे हर बारी।
मित भाषी के संग मधुर व्यवहारी।
षट्गुण धारक उत्तम कुल की नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ २॥
प्रथम पुत्र है चन्द्रसेन प्रियकारी।
विनयवान विद्वान महा गुणधारी।
मात-तात को लगता वल्लभकारी।
रहे सेवा में बनकर आज्ञाकारी।
दीन-दुःखी के खातिर करुणाधारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ३॥
रणसिंह नाम का पुत्र दूसरा पाया।
स्वभाव राक्षसी वैसी उसकी काया।
चलता उल्टी चाल नशा था छाया।
रुचता केवल उसको अपना खाया।
क्रूर जान स्वभाव डरे नर-नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ४॥

सुबुद्धि मंत्री राज काज का ज्ञाता ।
जन हित में वह नृप का राज चलाता ।
निज को जनता का सेवक बतलाता ।
सेवक सोचे बात प्रजा हितकारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ५ ।।

महाराजा ने निज दरबार लगाया ।
मंत्री से अपने मन का भाव बताया ।
कलाकारों को जाये यहाँ बुलाया ।
मंत्री पा आदेश बहुत हर्षाया ।
महाराज आपने उत्तम बात विचारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ६ ।।

हुई घोषणा कलाकार हर्षाये ।
ले ले कर अपनी कला महल में आये ।
सब अपनी अंगुली दाँतों तले दबाये ।
वे अब तक ऐसी कला देख ना पाये ।
लगी प्रदर्शनी सबने कला निहारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ७ ।।

कलाकार इक मोम अश्व था लाया ।
जिसने भी देखा उसको बहुत सराया ।
राजा ने देखा तो वह भी चकराया ।
समझ के असली पास चला मैं आया ।
देख कला को हर्ष मुझे है भारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ८ ।।

कलाकार तुम अपना नाम बताओ ।
पुरस्कार भी लेकर पहला जाओ ।
बुद्धि प्रकाश कह करके मुझे बुलाओ ।
मोम अश्व के गुण भी जान अब जाओ ।
उड़ सकता है यह नभ के मझारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ९ ।।

बैठ अश्व पर कीली यह दबाये ।
अश्वारोही उड़ा गगन में जाये ।
जिधर मोड़ दो यह उधर मुड़ जाये ।
ऊंचाई पर हमको यह पहुँचाये ।
जब चाहें तब इसको लेय उतारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। १० ।।

सुबह सुबह नित कंवर भ्रमण को जाये।
मुनिवृन्द के दर्शन वन में पाये।
छूकर के उनके चरण हृदय हर्षाये।
मेरे जीवन को मुनिवर सफल बनाये।
पंथ अहिंसा का है उत्तम कारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ११ ।।

जपो नित्य नवकार मुनि फरमाये।
आई विपदा इससे है टल जाये।
मंत्र प्रभा से सभी सुखी बन जाये।
दैहिक-दैविक कष्ट सभी विरलाये।
शुद्ध भाव से जपो मंत्र सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। १२ ।।

श्रद्धा से मुनि की बात कँवर ने मानी।
नवकार मंत्र की महिमा उनसे जानी।
गुरु कृपा से सुधरे मम जिन्दगानी।
सत्य-अहिंसा से यह बने सुहानी।
वन्दन चरणों में लेवे अब स्वीकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। १३ ।।

चलकर वन से पास पिता के आया।
अश्व महिमा जान मन में हर्षाया।
करूँ परीक्षण सच मैंने यदि पाया।
पुरस्कार पाओगे मन का चाया।
करो परीक्षण अश्व की करो सवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। १४ ।।

चन्द्रसेन ने निज को अश्व चढ़ाया।
संकेत मिला तो उसने कील दबाया।
उड़ने के खातिर अश्व वहाँ लहराया।
कील दबी तो अश्व हवा में आया।
नृपति के मन में खुशी हुई है भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। १५ ।।

उस कलाकार को लोग खड़े थे घेरे।
अब बदल गये हैं भाग्य आज तो तेरे।
हाँ तात कृपा नित रही यहाँ पर मेरे।

लो दूर हट गये सब अज्ञान अंधेरे।
अश्व ओर अब उसने दृष्टि पसारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ १६ ॥

चन्द्रसेन उड़ चला हवा में जाये।
त्वरित गति से बुद्धि दौड़ा आये।
गजब हो गया कैसे हम बतलाये।
क्यों उड़े कँवर जी हमको बिना बताये?
आँखों में मेरे छा रही है अंधियारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ १७ ॥

नभ में जाकर कँवर न देय दिखाई।
भूपति के संग मंत्री गया घबराई।
चेहरों पर भय रहा सभी के छाई।
कलाकार की आँखें भी भर आई।
हे प्रभु! आप ही रखना टेक हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ १८ ॥

अश्व रोकना मैंने नहीं बताया।
अब क्या होगा मन मेरा घबराया।
नृप नयनों में घना अंधेरा छाया।
कलाकार को तत्क्षण बन्दी बनाया।
मंत्री-संत्री देने लगे अब गारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ १९ ॥

अब क्या होगा नहीं समझ में आये?
बुद्धि बोला-अब तो उड़ते जाये।
महाराज नहीं, नभ से नजर हटाये।
शायद आता कंवर उन्हें दिख जाये।
कलाकार! की तूने यहाँ गद्दारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ २० ॥

क्षमावान हैं आप क्षमा करवायें।
मेरी कुछ नहीं भूल दया फरमायें।
महाराज गरज कर यह सन्देश सुनाये।
कलाकार को बन्दीगृह ले जाये।
क्या सोचे सब बुद्धि गई है मारी?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ २१ ॥

नृपति ने चहुं ओर दूत दौड़ाये।
पर कोई भी पता नहीं ला पाये।
सागर तक सेवक जा जा करके आये।
कहीं कंवर को खोज नहीं वे पाये।
सेना भी कँवर को ढूंढ़ ढूंढ़ है हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। २२ ।।

मां की आँखों से अश्रुधार ना टूटे।
मेरे भाग्य क्यों आज यहाँ पर फूटे।
बिना कँवर के जीवन विष की घूंटें।
वैभव के सब भोग रानी के छूटे।
शोक समुद्र में डूबे तात महतारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। २३ ।।

बुला नजूमी उसको सब बतलाया।
खोया मेरा कँवर नहीं मिल पाया।
चिन्ता सारी तजें आप महाराया।
सकुशल कँवर आयेंगे उत्तर आया।
तिलभर भी नहीं झूठ दो शंका निवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। २४ ।।

हय के ऊपर कँवर उड़ा ही जाये।
लेकिन हय को नहीं रोक वह पाये।
अपनी भूल पर रह रहकर पछताये।
थक करके अब तो चूर चूर हो जाये।
मेरी बुद्धि गई हाय तव मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। २५ ।।

पांवों से एक कील तभी दब जाये।
नभ से गिर कर अश्व धरा पर आये।
आते आते तरु से वह टकराये।
भयभीत कँवर था होश नहीं रह पाये।
गिरने से मूर्छा आई उसको भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। २६ ।।

कई दिनों के बाद होश जब आया।
भव्य कक्ष में पड़ा स्वयं को पाया।
इधर उधर देखा तो सिर चकराया।

स्थान कौनसा, कैसे मैं यहाँ आया।
चुपचाप दासी कर रही हवा बेचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। २७।।

अपरिचित ने निज मूर्छा को तोड़ी।
बतलाने को दासी उठकर दौड़ी।
नजर कँवर ने इत उत अपनी मोड़ी।
स्मृति होने लगी पूर्व की थोड़ी।
तभी आ गई सन्मुख राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। २८।।

हम धरती पर गिरे बहुत घबरायें।
कौन उठाकर हमें यहाँ पर लाये।
नगर कौनसा ठीक-ठीक बतलाये।
नभ से गिरकर कैसे हम बच पाये।
धन्यवाद सुध ली है जिसने हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। २९।।

कहां से आये कहां आपको जाना।
हमें बतायें अपना ठौर ठिकाना।
नभ से कैसे हुआ धरा पर आना।
सहज मिला सेवा का हमें बहाना।
देख आपको सखियाँ डरी हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३०।।

भ्रमण हेतु हम गई थी सखियाँ सारी।
उपवन में आवाज हुई इक भारी।
हुआ धमाका टूटी वृक्ष की डारी।
मूर्छित सूरत देखी मैंने प्यारी।
फटी रह गई आँखें वहाँ हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३१।।

सेवक मैंने उसी समय बुलवाये।
उठा के वे ही यहाँ आपको लाये।
वैद्यों का उपचार आप जब पाये।
सात रोज के बाद होश में आये।
सुन कँवर कहे अहसान आपका भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३२।।

काम जल्दी का पड़ा मुझे पछतानो।
चन्द्रसेन मम नाम आप यह जानो।
इसी लोक का हूं मुझको पहचानो।
आदर्श नगर का कँवर मुझे तुम मानो।
भूल हो गई मुझसे सचमुच भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३३ ।।

स्नेह आपका भूल नहीं मैं पाऊँ।
याद आपकी मन में सदा बसाऊं।
तात-मात के पास लौट फिर जाऊँ।
उनके दर्शन करुँ शान्ति मैं पाऊँ।
मात-पिता को चिन्ता रहे हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३४ ।।

मात-पिता को भूल आप ना पाये।
धन्य भाग जिसने तुम से सुत जाये।
भाग्यशाली ही पुत्र आप सम पाये।
देखे तात को हमने वर्ष बिताये।
जन्म लेते ही माता स्वर्ग सिधारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३५ ।।

टप टप कंवरी आंसू को टपकाये।
चन्द्रसेन बढ़ आगे धैर्य बंधाये।
लेता जो भी जन्म एक दिन जाये।
हिम्मत रखकर जीवन सफल बनाये।
स्नेह पिता का भी होता सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३६ ।।

भूत नगर में लोग भूत से फिरते।
बच्चे बूढ़े सभी नशा नित करते।
नन्हें नन्हें शिशु भूख से मरते।
समझदार बेचारे सब ही डरते।
आपस में सब करते मारा मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ३७ ।।

कामचोर सब लोग नशा कर झूमे।
आवारा बनकर सड़कों पर वे घूमे।
चरण मंत्री के महाराजा चूमे।

वह नशे में महाराजा के झूमे।
सेनापति की उतरे नहीं खुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ३८ ॥

नशा नाश को दे आवाज बुलाये।
नशा खोर का भाग्य बदल ना पाये।
अपने संग पीढ़ी को वह गिराये।
नशा खोर फिर कभी नहीं उठ पाये।
नशाखोर ना बने कभी नर नारी।
कर्मों की रेखा टरें कभी नहीं टारी ॥ ३९ ॥

आदर्श नगर आदर्श राज्य कहलाये।
नशा करे वह दण्ड राज से पाये।
चरस भांग गांजा आदि लाया जाये।
लाने का कारण पहले वहां बताये।
मद्य निषेध कानून बना हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ४० ॥

मम बांधव पीकर मद्य एक दिन आया।
राज्य नियम ने जेल उसे पहुँचाया।
महाराज ने उसको फिर समझाया।
कुसंगति ने इसको बुरा बनाया।
देख पुत्र को माता हुई दुखियारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ४१ ॥

राजकुमारी सुनकर के मुस्काये।
ऐसा पावन नगर मुझे दिखलाये।
बात बात में प्रेम वहां बढ जाये।
गंधर्व विवाह अब दोनों वहीं रचाये।
तुम मेरे हो मैं हूँ आज तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ४२ ॥

बात बात में कँवर यह बतलाये।
नवकार मंत्र में निश दिन ध्यान लगाये।
महामंत्र की महत्ता वह सुनाये।
दुःख इससे काफूर यहां हो जाये।
हो गई हर्षित सुनकर राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ४३ ॥

कंवरी ने भी श्रद्धा भाव जगाया।
महामंत्र का उसने ध्यान लगाया।
दिव्य भव्य आलोक हृदय में पाया।
अज्ञान तिमिर को उसने दूर भगाया।
ध्यान भावना उसने मन में धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ४४ ।।

गुप्त बात का भेद यहाँ खुल जाये।
दीवारों के कान गये बतलाये।
नृप कानों में बात पहुँच अब जाये।
पुरुष कौनसा कंवरी महल में आये।
नृप नयनों में फूट पड़ी चिंगारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ४५ ।।

नशे में नृप ने सेनापति बुलाया।
पड़ता उठता राजमहल में आया।
नृप बोला—क्या तुमने जाम चढ़ाया।
नशा रात का उतर नहीं है पाया।
सुबह सुबह क्यों आई याद हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ४६ ।।

राजकुमारी के महलों में चलना।
इसी वक्त उससे जाकर के मिलना।
कुँवरी हम से करने लगी है छलना।
पुरुष छाया का देखा कुछ ने हिलना।
कुल कलंकिनी का दूं शीश उतारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ४७ ।।

पुरुष शब्द नृप कानों से टकराया।
कौन है अन्दर बाहर से चिल्लाया ?
जल्दी खोल कपाट वह झल्लाया।
सेनापति ने धक्का एक लगाया।
खुला कपाट था गिरा वो चक्कर खारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ४८ ।।

कंवर कहे कंवरी से मत घबराना।
आता मुझको धैर्य से कार्य बनाना।
शेरों पर सीखा है अधिकार जमाना।

तूफानों में आता दीया जलाना।
दूर हटे यह बोली राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ४९ ॥

मेरे पिता को आप नहीं हैं जानें।
उन्हें दूसरा रूप कंस का मानें।
हर पल वे केवल अपनी ही तानें।
देख विरोधी को वे दौड़े खाने।
छुपने की करलो जल्दी तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ५० ॥

इतने में ही नृप अन्दर है आया।
देख कँवर को वह वहाँ चकराया।
कँवर घेरे को तोड़ नहीं है पाया।
सन्तरियों ने कँवर को अधर उठाया।
मूरख ने मृत्यु की नहीं विचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभीं नहीं टारी ॥ ५१ ॥

जानबूझ कर कँवर घेरे में आया।
सेनापति को धक्का दे के गिराया।
कर से छीन करवाल वह मुस्काया।
सन्तरियों ने निज को दूर हटाया।
हाथ जोड़कर खड़ी थी राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ५२ ॥

नशाखोर सन्तरी सारे घबराये।
नशे नशे में कुछ का कुछ कह जाये।
अट्टहास नृपति यह देख लगाये।
बड़े अहम् से देखे दाएं-बाएं।
सेनापति के लात दौड़कर मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ५३ ॥

बेवजह रक्त इस ठौर नहीं बह जाये।
सन्तरियों से निज को बन्दी बनाये।
राजकुमारी रह रह कर चिल्लाये।
बात मेरी हे तात! समझ अब जाये।
मेरी मांग इनने ही यहां संवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ५४ ॥

रोकर के कंवरी अपने कर फैलाये।
निर्दोष कँवर है सजा नहीं दिलवाये।
चाहे मुझको मृत्यु दण्ड फरमाये।
मेरे पति को क्षति नहीं पहुँचाये।
नृप बोला—अपराध किया है भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ५५ ।।

इससे हमदर्दी क्यों है राजकुमारी?
क्यों बिना इजाजत अपनी मांग संवारी?
तेरी सजा भी मैंने मन में धारी।
सड़ो जेल में आज्ञा यहाँ हमारी।
आजादी पा हो गई इच्छाचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ५६ ।।

कैदखाने में कंवरी को पहुँचाये।
इस नर को जंगल में लेकर जाये।
दोनों नेत्र निकाल यहां पर लाये।
अपनी एडियों से हम उन्हें दबाये।
रो रो कर के राजकुमारी हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ५७ ।।

मैं गर्भवती हूँ तात दया उर धारें।
अपने जवाईं को ना ऐसे मारें।
हिम्मत से लो काम कँवर उच्चारे।
भला होनी को कौन यहां पर टारे।
बेहोश हो गई गिरकर राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ५८ ।।

चार सन्तरी कँवरी को ले जाये।
चार कंवर को वन में लेकर आये।
चलते चलते कँवर उन्हें समझाये।
अच्छे कर्म कर जीवन सफल बनाये।
बोले सन्तरी हम तो आज्ञाकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।। ५९ ।।

धर्म-ध्यान की बातें उन्हें बताये।
पाप-पुण्य का भेद वहाँ समझाये।
मैं देऊँ सुझाव समझ वह जाये।

मर जाये सांप और लाठी टूट ना पाये ।
भरूं मुक्ता से झोली यहाँ तुम्हारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ६० ।।

मरा हिरण इस वन में कोई पाओ ।
नेत्र उसके निकाल आप ले लाओ ।
नृप को देकर मुक्ता यहाँ ही लाओ ।
मुक्ता रत्न की करूँ वर्षा तुम पाओ ।
बात बैठ गई सबके हृदय मझारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ६१ ।।

ऊँचे वृक्ष के पास मुझे पहुँचायें ।
आप खड़े सब नीचे ही रह जायें ।
मुक्ता रत्न हम ऊपर से बरसाये ।
लेकर उनको हर्षित मन घर जायें ।
सन्तरियों के मन में खुशी थी भारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ६२ ।।

कँवर के बन्धन हंसकर उनने खोले ।
ऊँचे तरु के पास पहुँच वे बोले ।
चढ़कर इस पर मुक्ता थैली खोले ।
कँवर आपकी जय जय नित हम बोले ।
चढ़ा वृक्ष पर हर्षित हुआ अपारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नही टारी ।। ६३ ।।

फंसा तरु में मोम अश्व को पाया ।
अश्व देखकर मन ही मन हर्षाया ।
कलपुर्जों में नहीं खोट कुछ आया ।
महामंत्र का उसने ध्यान लगाया ।
कंठा अपना तोड़ मुक्ता दी डारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ६४ ।।

बैठ अश्व पर पुर्जा तुरत दबाया ।
मन सन्तरियों का विस्मय से भर आया ।
मुक्ता पाकर मन उनका हरसाया ।
नृप आज्ञा का ध्यान उन्हें फिर आया ।
छिन ना जायें खुशियाँ अपनी सारी ।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ६५ ।।

मरा हिरण जंगल में दिया दिखाई ।
लेकर आँखें खुशी उन्होंने पाई ।
चले त्वरित वे अपने कदम उठाई ।

पहुंच भवन में जय जयकार लगाई।
फलित हो गई इच्छा आज हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ६६ ॥

नेत्र देखकर नृपति खुश हो जाये।
रख पावों के नीचे उन्हें दबाये।
सन्तरी चारों मन ही मन हर्षाये।
महाराज को हमने मूर्ख बनाये।
राजा सोचे जीता गढ़ है भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ६७ ॥

चन्द्रसेन अब आगे को बढ जाये।
चन्द्र मुखी को भूल नहीं वे पाये।
धूर्तपाल क्या कष्ट उसे पहुंचाये।
बार-बार चेहरा आँखों में आये।
आदर्श नगर को देख खुशी हुई भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ६८ ॥

पुर्जा अश्व का उसने वहाँ दबाया।
धीरे-धीरे अश्व धरा पर आया।
तात-मात को उसने शीश झुकाया।
दोनों ने ही सुत को गले लगाया।
पुत्र तेरे बिन बिगड़ी दशा हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ६९ ॥

नृपति ने मंत्री को तुरत बुलाया।
देकर के आदेश यह फरमाया।
आदर्श नगर को जाये आज सजाया।
आज महोत्सव जाये यहाँ मनाया।
अलकापुरी से नगरी लगे हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ७० ॥

दीन दुःखी को दान दिया अब जाये।
कैदी सारे मुक्त कर दिये जाये।
बुद्धि प्रकाश को जल्दी लाया जाये।
पुरस्कार मुंह माँगा दे दिया जाये।
मिलने कँवर से आये नर व नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ७१ ॥

चन्द्रसेन को खुशी नहीं वह भाये।
चन्द्र मुखी का चित्र सामने आये।

मन में उठते भाव वता नहीं पाये।
तात-मात को बात समझ नहीं आये।
पुत्र तुम्हें यह कैसी लगी बीमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ७२॥

चन्द्रसेन को तात-मात समझाये।
अपने इष्ट की उसको शपथ दिलाये।
भूत नगर की घटना सब बतलाये।
सुनकर के खुश तात-मात हो जाये।
ढोल बजा कर लायें राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ७३॥

नहीं जल्दबाजी में ऐसा कदम उठाये।
पिता पुत्र को वात सभी समझाये।
वन उत्तेजित भूतनगर नहीं जाये।
विना युद्ध के वात सभी वन जाये।
होय युद्ध में कितनी मारा मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ७४॥

जन धन का विनाश युद्ध में होता।
पिता मरे तो पुत्र हमेशा रोता।
चहुं ओर विनाश धरा पर होता।
कम पाकर के अधिक आदमी खोता।
पति को खोकर रोये विधवा नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ७५॥

ऐसा करो उपाय काम वन जाये।
मां, बहिन, वेटी पर आंच नहीं है आये।
चन्द्रसेन मन में विचार जगाये।
धर साधु का वेश वह फिर जाये।
बात हृदय में उसने ली अब धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ७६॥

मात-पिता का ध्यान हृदय में आवे।
मम कारण उनके ठेस नहीं लग पावे।
एक माह भी नहीं हुआ है आवे।
पागल मन को कैसे अब समझावे।
चिन्ता में पलकें हो गई उसकी भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी॥ ७७॥

चन्द्रसेन को नृप ने पास बुलाया।
बड़े प्यार से उस को सब समझाया।
जर्जर हो गई बेटे मेरी काया।
संन्यास लेने का समय हमारा आया।
समय आ गया समझो बात हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ७८ ॥

राजा बनकर मुक्ति मुझे दिलाओ।
सुन्दर राज कुमारी को तुम पाओ।
राजमहिषी लाकर उसे बनाओ।
प्रजा सेवा में अपना ध्यान लगाओ।
तेरे हित में कहीं बात हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ७९ ॥

क्यों पहुंचाते पीड़ आप यह कहके।
खुश हूं मैं तो छत्र छाया में रह के।
पागल मन ही राज पाने को बहके।
बन के चिरैया मेरा मन तो चहके।
कंठों से निकले मेरे तो किलकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८० ॥

मैं मौज मजे में समय बिताना चाहूं।
सेवा करके ही जीवन सफल बनाऊँ।
मैं झंझट में कभी न पड़ना चाहूं।
निज को पिंजरे का पंछी नहीं बनाऊँ।
किया निवेदन मैंने सोच विचारी
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ८१ ॥

कल राज ज्योतिषी को मैंने बुलवाया।
राज तिलक का शुभ मुहूर्त निकलाया।
महामंत्री को भी यहां बताया।
नाम तुम्हारा सुनकर वह हर्षाया।
शुरू हो गई अब उसकी तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८२ ॥

तात सामने कँवर बोल ना पाया।
आँखों के आगे घना अंधेरा छाया।
चन्द्रमुखी को नहीं नगर में लाया।
वन में जाकर त्यागूं अपनी काया।
कब तक बैठा रहूं यहां मन मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८३ ॥

रात अंधेरी चहुँ ओर घिर आई।
स्वर्ण अशर्फियाँ उसने वहां उठाई।
मोम अश्व के थैली दी लटकाई।
बैठ अश्व पर पुर्जा दिया घुमाई।
उड़ा अश्व बन गया गगन का चारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८४ ॥

अब तात-मात का ध्यान कंवर को आया।
उड़ते अश्व को उसने पुनः घुमाया।
मात-पिता के कक्ष के बाहर आया।
कर बाहर से प्रणाम शीश झुकाया।
नवकार मंत्र की जपी प्रतिज्ञा प्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८५ ॥

उड़े गगन में अश्व आगे बढ़ जाये।
रात रात में भूत नगर पहुँचाये।
ऊँचे वृक्ष को देख अश्व ठहराये।
छिपा अश्व को साधु रूप बनाये।
चिमटा-कमण्डल लिया हाथ में धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८६ ॥

चलता चलता नगरी में है आया।
एक वृद्धा को बैठी उसने पाया।
हमें चाहिए पानी उसे बताया।
साधु को देख के वृद्धा मन हर्षाया।
उसने उंडेली शीतल जल की झारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८७ ॥

मैं हूं निर्धन जीवन यहाँ बिताऊँ।
इच्छा होती भोजन तुम्हें कराऊँ।
पास नही कुछ मेरे क्या बतलाऊँ।
कभी कभी तो भूखी ही सो जाऊँ।
वृद्धावस्था के कारण यह लाचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८८ ॥

दिन सभी एक से नही होते हैं माई।
लक्ष्मी चंचल गई यहाँ बतलाई।
दया भावना तेरे मन में आई।
आतम भाव को तूने लिया जगाई।
ये पांच अशर्फी रखो कर में धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ८९ ॥

देख अशर्फी वृद्धा खुश हो जाये।
धन्य भाग जो आप यहाँ पर आये।
उसके चेहरे पर चमक नई छा जाये।
स्वर्ण अशर्फी सीने से चिपकाये।
मम निर्धनता तुमने आज निवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ९० ।।

नगर कौनसा नृप कैसा है माई?
साफ साफ तुम देओ मुझे बताई।
धूर्तपाल की नगरी भूत है भाई।
उसकी दुष्टता चहुँ ओर है छाई।
नशे बाज हो गये सभी कर्मचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नही टारी ।। ९१ ।।

निज बेटी को नृप ने कैद में डाला।
गर्भवती हो गई किया मुँह काला।
नृप नयनों में पड़ा हुआ है जाला।
हर पल पीता रहता है वह हाला।
विवाह किया है मैंने कह कह हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ९२ ।।

किसी राजकँवर से उसने ब्याह रचाया।
नृप महानीच है नहीं मान वह पाया।
उस राजकँवर को वन मांही पहुंचाया।
नेत्र निकाले एड़ी से कुचलाया।
कर्मचारी भी हो गये अत्याचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ९३ ।।

राजा के जासूस छुपे यहाँ रहते।
जन मन की बातें नृप से जाकर कहते।
चुप रहकर के लोग दुःखों को सहते।
किले कल्पना के बनते फिर ढहते।
समझ गया है बात कँवर भी सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।। ९४ ।।

नवकार मंत्र का उसने ध्यान लगाया।
उसी वेश से चला नगर में आया।
देख तरु को आसन वहाँ जमाया।
बम बम भोले उसने नाद गुंजाया।
लोग सोचते योगी सिद्धि धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नही टारी ।। ९५ ।।

कर को जोड़े लोग वहां पर आते।
अपने अपने दु:ख आकर वतलाते।
इस नगरी में रहकर हम पछताते।
निर्धनता में जीकर दिवस विताते।
कब देखेंगे हम सब भोर उजारी ?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ९६ ॥

कष्ट कर्मों के जानो सारे भाई।
नवकार मंत्र को जपो सदा सुखदाई।
आये दु:ख सारे इससे टल जाई।
धर्म ध्यान कर जीवन देवो बिताई।
सर्व सुखी नहीं कोई भो संसारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ९७ ॥

पहचाना सन्तरी एक दिवस है आया।
रो रो कर उसने दुखड़ा वहाँ सुनाया।
कंवर साधु ने धीरज उसे बंधाया।
तेरे पर है दुष्ट ग्रहों की छाया।
सुख चाहो तो मानों वात हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ९८ ॥

भाग्यवान नही तुझसा देय दिखाई।
आने वाले दिन तेरे सुखदाई।
गर्द तेरे माथे पर अव भी छाई।
मैं सिद्धि से उसको देऊं हटाई।
गर्द हटा दो करूं सदा जय कारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ ९९ ॥

भाग्य तुम्हारा जाग पुन: फिर फूटा।
तुम्हें साथियों ने ही वन में लूटा।
सच कहते महाराज पुण्य ही खूटा।
मैं करके विश्वास बन गया झूठा।
रखते मुनिवर ज्ञान आप तो भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१००॥

राजकंवर कुछ महिने पहिले आया।
गुप्त रूप में उसने ब्याह रचाया।
नृप ने दे आदेश तुम्हें भिजवाया।
उसके बदले नयन हिरण के लाया।
राजकंवर के लिये बना उपकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१०१॥

हे मुनिवर ! अब आगे नहीं बतायें।
खुला भेद तो मृत्यु दण्ड हम पायें।
नयनों में आँसू उसके भर हैं आये।
चलो छोड़ो हम आगे नहीं सुनाये।
सन्तरी बोला रहूं सदा आभारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१०२।।

चलो गरीबी अपनी दूर हटाओ।
स्वर्ण अशर्फी मुझसे लेकर जाओ।
मुझको तुम सहयोग यह दिलवाओ।
राजकुमारी से मुझको मिलवाओ।
अब तुम्हें उठानी होगी जिम्मेदारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१०३।।

उस राजकुमारी पर संकट है आया।
मेरे गुरु ने मुझे यहाँ भिजवाया।
नृप के ऊपर है दुर्दिन की छाया।
करो काम जो मैंने तुम्हें बताया।
हिम्मत से हो काम सभी सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१०४।।

सन्तरी सोचे बला यह तो आई।
इधर पड़ूँ तो कुआं उधर है खाई।
भक्त मण्डली तभी वहाँ पर आई।
मुनि के छूकर चरण वह हर्षाई।
महामंत्र की महिमा मन में धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१०५।।

महामंत्र का बाबा ध्यान लगाये।
क्षण-क्षण उसका चित्त हरा हो जाये।
विश्वास मंत्र में गहरा सभी जमाये।
खुशियों के घन आज हृदय में छाये।
दर्शन करके खुशी हमें है भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१०६।।

दर्शन करने को नित्य सन्तरी आये।
कँवरी से कैसे मिले यह समझाये।
वात कँवर के नहीं समझ में आये।
रह रह करके समय निकलता जाये।
कहो रात में कब आयेगी बारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१०७।।

एक दिवस सन्तरी ने यह बताया।
आज निशा में मेरा पहरा आया।
अर्ध निशा से मुझको गया लगाया।
कहा कँवर ने अच्छा अवसर पाया।
आज देखूँगा मैं वह राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥ १०८ ॥

वेश सन्तरी का तुम अभी उतारो।
मेरे वेश को तुम अपने तन धारो।
महामंत्र को बैठ यहाँ उच्चारो।
स्वर्ण अशर्फी की थैली संभारो।
देख थैली को खिल गई मन फुलवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१०९॥

निशा होते ही कंवर जेल में जाये।
शान्त भाव से पहरा वहाँ लगाये।
मूर्छित कंवरी देख दुःखी हो जाये।
फेंक कंकरी उसको वह जगाये।
कहे—उठो मैं आ गया राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११०॥

स्वर परिचित उसके कानों में आया।
हिम्मत करके निज को वहाँ उठाया।
गर्दन को उसने इधर उधर घुमाया।
नीर नयन से टप टप फिर टपकाया।
कैद खाने में गूंज उठी सिसकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१११॥

वेश सन्तरी का धर कर मैं आया।
नकली दाढ़ी को उसने वहाँ हटाया।
जागे मेरे भाग्य प्रभु की माया।
स्वामी तुम बिन कष्ट बहुत ही पाया।
सूख हो गई काँटा तुम तो प्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११२॥

तभी वहाँ पर जेलर दौड़ा आया।
क्यों की कैदी से बात वह चिल्लाया।
मुख राजकंवर ने उसका तभी दबाया।
जेलर को उसने बेहोश बनाया।
छीन के चाबी खोली वहाँ किवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११३॥

कैद खाने में जेलर को ले जाये।
कंवरी को उसके कपड़े हैं पहनाये।
बेरोक टोक के दोनों बाहर आये।
जल्दी जल्दी अपने कदम बढ़ाये।
छिपे अश्व को अब तो दिया उतारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११४॥

मोम अश्व पर दोनों उड़ते जायें।
रात चांदनी शीतल चले हवायें।
कंवरी बोली मन मेरा घबराये।
धरती पर मुझ को जल्दी से उतरायें।
दर्द पेट में उठे मेरे तो भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११५॥

दर्द समझकर राजकंवर घबराये।
नीचे देखा सागर वहाँ लहराये।
दिशा निशा में भूल किधर को आये।
भूमि का टुकड़ा देख नहीं हम पाये।
लगे देव परीक्षा ले रहे आज हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११६॥

एक टापू सागर में दिया दिखाई।
हर्षित होकर अश्व लिया उतराई।
राजकुमारी ने राहत अब पाई।
कुटिया कँवर को नजर तभी वहाँ आई।
कँवर के संग में चल दी राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११७॥

कुटिया से ॐकार नाम है आया।
राजकँवर ने सत्वर कदम बढ़ाया।
नमस्कार कर दर्द वहां दर्शाया।
मदद हमारी करे आप मुनिराया।
मुश्किल हल हो जाये सभी तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११८॥

राजकँवरी ने पुत्र रत्न है पाया।
नवजात शिशु ने अपना रुदन सुनाया।
कँवर दौड़कर पर्ण कुटी में आया।
सुत को देखा चित्त बड़ा हर्षाया।
सफल कामना कर रहे प्रभु हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥११९॥

कँवर ऋषि के निकट चला अब आया।
चरणों को छूकर अपना शीश झुकाया।
कृपा आपकी हुई हमें ठहराया।
पाकर आशीर्वाद पुत्र भी पाया।
गूँज रही कुटिया में अब किलकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१२०।।

हिंसक जन्तु यहाँ उत्पात मचायें।
पा नर तन की गंध इधर आ जायें।
तज कर टापू आप चले अब जायें।
पता नहीं कब मुश्किल में पड़ जायें।
शेर, बाघ, सूअर रहते खूंखारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१२१।।

तप बल मैंने इतना यहाँ जगाया।
हिंसक पशु भी देख मुझे घबराया।
मेरी कुटी के पास न कोई आया।
डरते मेरी देख यहाँ वे छाया।
मेरा तप तो बना हुआ बलकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१२२।।

बात आपने मुझको सत्य बताई।
देख आपको मैंने शक्ति पाई।
बुद्धि बल की महिमा सबने गाई।
आत्म बली ने विजय विश्व पर पाई।
नहीं करे कोई बिगाड़ पशु बलकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१२३।।

ऐसा है तो आप यहीं रह जायें।
आत्म शक्ति को निश दिन यहाँ जगायें।
राजकुमारी निश दिन स्वास्थ्य बनाये।
खुली हवा में शिशु को नित्य घुमाये।
हवा यहाँ की मेरे लिए हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१२४।।

धीरे-धीरे भँवर बड़ा हो जाये।
अभय नाम से माता उसे बुलाये।
तीर चलाना तात उसे सिखलाये।
तलवार हाथ में हँसकर उसे थमाये।
सीखो क्षत्रिय धर्म दया उर धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१२५।।

ऋषि राज भी उसको नित्य पढ़ाये।
पुण्य योग से सब विद्या पा जाये।
कँवर भँवर के संग में दिवस बिताये।
कितने बीते वर्ष जान ना पाये।
शिक्षा पाकर अभय बना संस्कारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१२६॥

चन्द्रसेन को स्वप्न एक दिन आया।
श्वेत वसन में अपनी मात को पाया।
खुले अचानक नयन वह घबराया।
ऋषिराज को सारा हाल बताया।
चिन्ता मेरे मन में हो रही भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१२७॥

आज्ञा आप से इसी समय मैं पाऊँ।
पत्नी पुत्र को साथ अभी ले जाऊँ।
नहीं पड़ता है चैन बहुत घबराऊँ।
अब मेरे मन का हाल कैसे बतलाऊँ।
रात अंधेरी कैसी यह विचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१२८॥

भोर होते ही आप चले कल जाना।
मुझ से देखा नहीं जाता अकुलाना।
रात अंधेरी पड़े नहीं पछताना।
सोच समझ कर अपने पाँव उठाना।
रात पोष की ठंडी बहे बयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१२९॥

क्षमा करें ऋषिराज अभी हम जायें।
कल किसने देखा है फिर पछतायें।
तात मात के कर दर्शन सुख पायें।
अनमने भाव से मुनि आज्ञा फरमाये।
करो वही जो इच्छा बने तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३०॥

तेज ठंड है बात मान यह जाये।
जलती सिगड़ी साथ यह ले जाये।
इसके द्वारा ठंड नहीं लग पाये।
समय मिले तो मिलने को फिर आये।
योग सुबह का मुझे लगे हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३१॥

अश्व मोम का आंगन में है लाया।
स्वयं बैठकर पत्नी को बैठाया।
अभय कंवर को अपने बीच जमाया।
जलती सिगड़ी को आगे रखवाया।
पुर्जा दबा के बन गया गगन विहारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३२॥

अकस्मात ही मन कैसे उचटाया ?
मन जाने का औचक यहाँ बनाया।
भीड़ भाड़ से दूर वृक्षों की छाया।
वन का वातावरण मुझे तो भाया।
रेल पेल नगरों की लगती खारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३३॥

सपना मुझको बहुत बुरा है आया।
अकस्मात चलने का भाव बनाया।
तात-मात का प्रेम खेंचकर लाया।
कब पाऊँ मैं अपने तात की छाया।
आज खुशी है मेरे मन में भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३४॥

भोर होते ही नगर पहुंच हम जाये।
हमें देख खुश नगरवासी हो जाये।
अभय कहे पितु बात मान यह जाये।
नगर पहुंच कर मोम अश्व हम पाये।
करेंगे इसकी हम भी नित्य सवारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३५॥

बेटे मेरे अश्व चाहे ले जाना।
राजकुमारी देख न हृदय गंवाना।
चन्द्रमुखी का चेहरा बना लजाना।
अभय कहे मैं चाहूं तुम्हें घुमाना।
मोम अश्व की गति बहुत है प्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३६॥

मन में सोचा वह नहीं सब होता।
होता तो मानव कभी नहीं फिर रोता।
सुख दुःख मानव सभी कर्म से ढोता।
वही काटता फसल यहाँ जो बोता।
विधना के आगे चलती नहीं हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१३७॥

हँसी खुशी में तीनों मन बहलाये।
सुत की बातें सुन दम्पत्ति हर्षाये।
शीत ऋतु में तीनों उड़ते जाये।
कब क्या हो कुछ पता नहीं लग पाये।
पूर्ण नहीं हो पाती मन में धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१३८।।

सिगड़ी की उष्मा उनकी ठंड भगाये।
लेकिन होनी को टाल कौन है पाये।
मोम अश्व का पिघल मोम अब जाये।
देख पिघलता अश्व सभी घबराये।
सागर ठाठे मार रहा था भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१३९।।

सागर में आकर तीनों ही गिर जाये।
चन्द्रसेन भी संभल नहीं है पाये।
मां का आंचल थाम अभय चिल्लाये।
चन्द्रमुखी लहरों में बहती जाये।
कस कर थामी अभय कँवर ने सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४०।।

चन्द्रसेन लहरों में गोते खाये।
दु:ख में उसको इष्ट याद अब आये।
जल्दी-जल्दी में मैंने इष्ट भुलाये।
नवकार मंत्र का स्मरण उसको आये।
किस्मत ही लगती खोटी बनी हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४१।।

लकड़ी का बक्सा चन्द्रसेन है पाये।
थाम उसी को बहता-बहता जाये।
सुत के संग माता भी कूल को पाये।
घबराकर के सुत को गले लगाये।
करे पिता-पति की दोनों चिन्ता भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४२।।

भोर होते ही दोनों कूल निहारे।
दूर-दूर तक सूने पड़े किनारे।
जलधि में भी दृष्टि पुन: पसारे।
वहाँ बैठे-बैठे दोनों आंसू डारे।
भाग्य परीक्षा ले रहा पुत्र हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४३।।

बैठे-बैठे हाथ नहीं कुछ आये।
बेटे क्यों नहीं पथ में पाँव बढ़ाये।
हिम्मत करके उन ने कदम उठाये।
देवपुरा नगरी के बाहर आये।
कहा अभय ने माँ चलना दुष्वारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४४।।

विप्र शिवानंद तभी वहां पर आया।
उदास दोनों को उसने बैठे पाया।
क्या हुआ बहिन सुत तेरा क्यों घबराया।
चन्द्रमुखी ने सारा हाल बताया।
बहिन समझ गया मैं सब बात तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४५।।

भगवान सदा अच्छा ही करता बहिना।
उचित नहीं है खड़े यहाँ पर रहना।
कर्मों के दु:ख तो पड़ते सबको सहना।
घर चलो मेरे अब मान के मेरा कहना।
वहीं करुंगा तुमसे बातें सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४६।।

विप्र शिवानन्द अपने कदम बढ़ाये।
माता के संग सुत भी चलता जाये।
घर आकर के विप्र उन्हें बतलाये।
अहो भाग्य जो आप यहाँ पर आये।
कहे पण्डिताइन यह कौन बेचारी ?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४७।।

सुना विप्र ने वह सब उसे सुनाया।
बेटी बनाकर मैं इनको यहाँ लाया।
अभय कँवर का उसने लाड़ लड़ाया।
अंधियारे घर में प्रभु ने दीया जलाया।
अब गूंजेगी आंगन में किलकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४८।।

तुम बैठो बेटी सारी बात बताऊं।
आदर्श नगर की घटना तुम्हें सुनाऊँ।
देकर के आशीर्वाद आज हर्षाऊँ।
मैं महारानी की जय जय कार लगाऊँ।
अभय कुँवर पर जाऊँ मैं बलिहारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१४९।।

क्या बतलाऊँ फूटे भाग्य हमारे।
भू-पति विक्रम जग से स्वर्ग सिधारे।
अन्तिम सांसों तक नाम यही उच्चारे।
जल्दी आ जाओ चन्द्रसेन सुत प्यारे।
पुत्र विरह की उनको लगी बिमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५०॥

रणसिंह आपका देवर राज संभारे।
अन्याय युक्त वह काम करे अब सारे।
भयभीत प्रजाजन किसको आज पुकारे।
गूंगे हो गये लोग जुल्म के मारे।
शासक नगरी का हो गया अत्याचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५१॥

चन्द्रमुखी ने घर में नजर घुमाई।
दी निर्धनता उसको वहाँ दिखाई।
बुला पुत्र को दिया तुरत समझाई।
घर के बाहर पड़े नहीं परछाई।
अभय कुँवर ने बात समझ स्वीकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५२॥

चन्द्रमुखी बन बेटी समय बिताये।
घर के कामों में अपना मन बहलाये।
अनपढ़ लोगों को घर में बैठ पढ़ाये।
जीवन की महत्ता उनको नित्य बताये।
पढ़ने लिखने से जीवन हो सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५३॥

अनपढ़ मानव पशुवत जीवन जीता।
घूंट जहर का रह रह कर के पीता।
भूलो उसको कल कैसा है बीता।
घट हृदय ज्ञान बिन ना रह जाये रीता।
नर के संग घर में पढ़ी लिखी हो नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५४॥

सेवा में अपना सारा समय बिताये।
मन की पीड़ा को मन में रहे छुपाये।
पथिक उधर से कोई आये जाये।
बातों में महिमा सागर की बतलाये।
घटना सागर की कहो कोई सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५५॥

अभय कंवर घर आंगन में ही खेले।
सुरभि सुमन की बगियाँ बाहर फैले।
बच्चों के जुड़ने लगे वहाँ पर मेले।
बाहर चलने को बच्चे उसको ठेले।
जिद आगे माँ क्या करती बेचारी?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५६॥

उस नगरी के सेठ आले से आला।
एक किरोड़ीमल सबसे मतवाला।
तन से गोरा मन से पूरा काला।
धन का उसके नयनों पर था जाला।
करे पुत्र की शादी की तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५७॥

सेवकगण को अपने पास बुलाया।
बरात जहाज में जायेगी बतलाया।
नर बलि देने का भाव मेरे मन आया।
यह देखो मैंने धन का ढेर लगाया।
प्राणों के बदले ले कोई स्वीकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५८॥

सेवक गण ने अपने हाथ हिलाये।
प्राणों के बदले हम क्यों धन को पाये।
सेठ किरोड़ीमल उन पर झल्लाये।
मूर्खो ऐसे मौके नित नहीं आये।
देव जलधि के मुक्ति करे तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१५९॥

पुत्र सेठ का तभी अचानक बोला।
जैसे गैंडे ने अपने मुख को खोला।
कहूं बात मैं तुमको आने सोला।
शिवानन्द जो घूमे लटका झोला।
सुत के संग देखी मैंने उस घर नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६०॥

कहा सेठ ने तो फिर जल्दी जाओ।
उस लड़के को उठा अभी तुम लाओ।
धन देकर ब्राह्मण को वहाँ समझाओ।
नहीं माने तो उस पर लठ्ठ जमाओ।
देवदास तुम करो सभी तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६१॥

ले लठैत घर देवदास अब आया।
शिवानन्द को आकर के धमकाया।
यह लड़का तुमने कहो कहाँ से पाया।
शिवानन्द ने दोहित्र उसे बतलाया।
संस्कृत पढ़ने की इसने हृदय विचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६२॥

अश्व घुमाना इसको सुन्दर आता।
जल में तैरना इसे बहुत ही भाता।
कोकिल कंठों से गीत मधुर यह गाता।
थोड़ा सीखाओ सीख बहुत यह जाता।
इस वय में पाई इसने तो होशियारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६३॥

सेठ किरोड़ीमलजी ने फरमाया।
लेने की खातिर मैं तो इसको आया।
तुम्हें देने को देखो धन भिजवाया।
दाल में काला नजर विप्र को आया।
सुध सेठ साहब ने कैसे ली है हमारी ?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६४॥

बारात सेठ के सुत की कल ही जाये।
जल पथ में कोई बाधा नहीं आ पाये।
नर बलि देने का मानस सेठ बनाये।
हां करदो वरना जबरदस्ती ले जाये।
बूढ़े सेठ की बुद्धि गई क्या मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६५॥

भाई पापी मुझको नहीं बनाओ।
जिस रस्ते आये लौट उसी से जाओ।
धन का मुझको लोभ नहीं दिखलाओ।
नीच कर्म करने से तुम कतराओ।
हुई देवदास क्या बुद्धि भ्रष्ट तुम्हारी ?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६६॥

सुन देवदास का अब तो चढ़ गया पारा।
शिवानन्द को पटक उन्होंने मारा।
क्या नन्हा बालक अभय करे बेचारा।
रहा देखता नहीं और कुछ चारा।
मार मार कर देते जाते गारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१६७॥

अधमरा बनाकर उसको वहाँ गिराया।
अभय कँवर कुछ समझ नहीं था पाया।
मुँह दबा अभय का उनने उसे उठाया।
सेठ कदम में उसको जा पहुंचाया।
चीख न पाया उसकी थी लाचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१६८।।

थोड़ी देर में चन्द्रमुखी जब आई।
देख विप्र की दशा वह घबराई।
सुन अभय कँवर की बात वह चिल्लाई।
हे भगवन्! यह कैसी आफ़त आई।
कर जोड़ पुकारे आज तुम्हें दुखियारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१६९।।

किन कर्मों का फल मैंने यह पाया।
दुष्टों ने मेरे सुत को आज उठाया।
मेरे कारण संकट घर में आया।
विप्र शिवानन्द ने उसको समझाया।
कब यहाँ मूढता बन जाये हत्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१७०।।

रणसिंह नृपति ने उसको सिर पे चढाये।
इसलिए सेठ ने यह उत्पात मचाये।
अभय कँवर को जलधि भेंट चढाये।
महानीच वो हिंसा पथ अपनाये।
मूर्छित होकर गिर गई राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१७१।।

मूर्छा टूटी तो बिलख-बिलख कर रोई।
आज जगत में मेरा रहा न कोई।
बिछुड़े पति की बाट सदा ही जोई।
उनकी याद में नहीं चैन से सोई।
मैं भी मर जाऊं खाकर आज कटारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१७२।।

सुनकर के चीत्कार कई जन आये।
विप्र शिवानन्द वार-वार समझाये।
ज्योतिष के पन्ने पलट-पलट वतलाये।
अभय कँवर पर है पुण्यों के साये।
नृप की भाँति सेठ भी अत्याचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१७३।।

सागर तीरे सेठ चला है आया।
अभय कँवर को उदधि में फिकवाया।
अभय तैरता पास पोत के आया।
थामा रस्सा निज को वहाँ बचाया।
आई मौत को उसने ठोकर मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१७४॥

कप्तान पोत का दृश्य देख हर्षाया।
अभय कँवर को खेंच पोत पर लाया।
हिम्मत रख लहरों से तू टकराया।
लगता तेरा काल नहीं है आया।
हो कौन बताओ मुझको घटना सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१७५॥

अभय कँवर ने सारा हाल सुनाया।
कैसे अपनी मां के संग में आया।
मेरी मां ने दुःख कितना है पाया।
कर्म गति ने कितना यहाँ तड़फाया।
रोती होगी माँ तुम बिन बेचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१७६॥

अब चिन्ता तजकर रहो पास में मेरे।
देखूँगा मैं दुश्मन कौन है तेरे।
श्रेष्ठी सेवक घूमेंगे यहाँ सवेरे।
मेरे ही कक्ष में लगाये रखना डेरे।
तेरे प्यारे बोल लगे हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१७७॥

तुझको तेरी माता तक पहुँचाऊँ।
तब ही जाकर चैन यहाँ मैं पाऊँ।
सेवा का फल मैं तो उत्तम चाहूं।
बड़े प्रेम से गीत प्रभो के गाऊँ।
पर सेवा व्रत मैंने लिया है धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१७८॥

समय समय पर भोजन पानी पाये।
अभय कंवर अब हंसकर समय बिताये।
आ आ कर कप्तान उसे समझाये।
जल्दी ही अब अपनी मंजिल आये।
समय निकलता जाता है सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१७९॥

चलता चलता पोत कूल पर आया।
लड़की वालों ने स्वागत बैंड बजाया।
देख के दुल्हा सबने मुंह बिचकाया।
बदसूरत काणा दुल्हा देखो आया।
पूरे नगर में होने लगी थूपकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१८०॥

सेठ किरोड़ीमल सुनकर घबराया।
चेहरा हो गया खुश्क बदन कुमलाया।
लड़की ने अपने तात को साफ सुनाया।
बदसूरत लड़का है सुनने में आया।
तात प्यार में बेटी पली तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१८१॥

यदि ऐसा है तो अगला कदम उठाऊँ।
नहीं देखा मैंने देख उसे मैं आऊँ।
वेश बदलकर चल मैं तुझे दिखाऊँ।
बिन देखे उसको नहीं शान्ति मैं पाऊँ।
करो जल्दी चलने की तुम तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१८२॥

जासूस दौड़ता हुआ पोत पर आया।
आ के सेठ को उसने सब बतलाया।
कंवर हमारे काणे पता लगाया।
लड़की ने अपने पितु को मना कराया।
कहीं किरकिरी हो ना जाये हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१८३॥

सेठ किरोड़ीमल अब तो घबराया।
बड़ी उमंग से जान बना मैं लाया।
सेवक-समधि को अपने पास बुलाया।
लड़की वालों का सारा भेद बताया।
कटने वाली है अब तो नाक हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१८४॥

कहा एक ने क्यों नहीं बात बनाये।
सुन्दर लड़का ढूंढ कहीं से लाये।
पुत्र आपका उसको यहाँ बताये।
दुल्हे के रूप में उसको अभी सजाये।
वह करो कि जिससे इज्जत बचे हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१८५॥

ऐसा लड़का ढूंढ़ कहाँ से लाये।
जो बनकर दुल्हा इज्जत आज बचाये।
कप्तान कहे यदि क्षमा आपसे पाये।
तो सुन्दर लड़का अभी यहाँ पर आये।
करो जल्दी श्रेष्ठी ने बात उच्चारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१८६।।

अन्याय लड़के के साथ नहीं हो पाये।
दे वचन तो आगे अपनी बात बढ़ाये।
कहा सेठ ने अब ना देर लगायें।
जल्दी से लड़का आप ढूंढ कर लायें।
कप्तान हृदय में छाया हर्ष अपारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१८७।।

कप्तान दौड़कर अपने कक्ष में आया।
अभय कँवर को सारा हाल सुनाया।
हाथ पकड़ कर उसे सामने लाया।
यह तो वोही-सेठ वहाँ चिल्लाया।
गुस्सा सेठ को आया तत्क्षण भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१८८।।

जब तक आयु बलवान मौत नहीं आये।
ना जले आग में जल भी डुबो ना पाये।
चलो ठीक है तैयारी करवाये।
आज रात का दुल्हा इसे बनाये।
कप्तान संभालो तुम ही जिम्मेदारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१८९।।

अब अभय कँवर को दुल्हा वहाँ बनाया।
हीरे मोती का हार उसे पहनाया।
रेशमी वस्त्र से उसको खूब सजाया।
जिसने भी देखा उसने उसे सराया।
देवयानी लख हर्षित मन में भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९०।।

तोरण पर बारात चली है आये।
दुल्हा-दुल्हन ने अपने फेरे खाये।
अभय सेन उदास वहाँ बन जाये।
देवयानी लख मन ही मन घबराये।
क्यों उदासी की चादर तुमने डारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९१।।

सुन्दर पाया रूप हँसी नहीं पाई।
कुछ भूल हुई तो दे दो क्षमा कराई।
दो मन की बातें मुझको सभी बताई।
कैसा दुःख है दो मुझको समझाई।
मैं एक रात का पति तुम्हारा प्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९२।।

देवयानी कहे नाथ आप क्या कहते ?
बिना आपके प्राण अब नहीं रहते।
शब्द आपके शोले बनकर दहते।
अरमानों के महल बने सब ढहते।
कहो खोलकर बातें मुझको सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९३।।

अभयसेन ने सारी बात बताई।
सुनकर बातें देवयानी घबराई।
घटा दुःखों की उस पर तो गिर आई।
हे स्वामी आपकी मैं हूं अब परछाई।
वह सेठ बना फिरता है अत्याचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९४।।

अभयसेन के मन में आनन्द छाये।
निज पत्नी को अपने गले लगाये।
मैंने तेरे संग में फेरे हैं खाये।
नहीं तजूं तुझे कैसे भी संकट आये।
आँच नहीं आयेगी तुझ पर प्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९५।।

देवयानी के मन में भय था छाया।
तात सामने मन का दर्द बताया।
तुमने बेटी योग्य पति है पाया।
जाना है ससुराल उसे समझाया।
चिन्ता तज जाने की करो तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९६।।

पाकर के दहेज सेठ हर्षाया।
सेवक गण ने पोत माँही पहुँचाया।
बिना अभय के उसने पोत बढ़ाया।
देवयानी के मन में संशय आया।
पीछे मुड़ मुड़ देखे वह बेचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।१९७।।

चलकर के जहाज ठिकाने आया।
नहीं अभय को वहाँ किसी ने पाया।
सभी सोचते सागर में फिकवाया।
दया हीन है नहीं दया मन लाया।
प्रभु देख रहे इसकी करतूतें कारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१९८॥

विचार मग्न सब उदधि तट पर आये।
बैण्ड बाजे स्वागत में गये बजाये।
नगर निवासी वधु देख हर्षाये।
किस्मत काणे की कह कह सभी सराये।
माल दहेज का सेवक लगे उतारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥१९९॥

डोली लेकर कहार वहाँ अब आये।
देवयानी चल दूर वहां से जाये।
क्या बात हो गई जल्दी हमें बताये।
लख देवयानी को सेवकगण घबराये।
इक वृद्धा बोली-बहू कहो बात तुम सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२००॥

त्वरित पोत इक उनको दिया दिखाई।
उसी स्थान पर ठहरा वह भी आई।
अभयसेन संग उतरे कई सिपाही।
सब खड़े हो गये घेरा वहाँ बनाई।
क्या करते हो सेठ कहे ललकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०१॥

अभयसेन कुछ सेवक लेकर आया।
मन देवयानी का देख उसे हर्षाया।
कर थाम उसे डोली में वहाँ बैठाया।
तभी किरोड़ीमल वहाँ दौड़ा आया।
कहाँ लिये जाते हो बहू हमारी?
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०२॥

सेठ झूठ का मत ले अरे सहारा।
वरना मेरा चढ़ जायेगा पारा।
यह दहेज घर मेरे जाये सारा।
तुम हो जाओ जल्दी नौ दो ग्यारा।
अच्छी लगती मुझे ना मारा मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०३॥

घबरा करके सेठ पोत पर आया।
कप्तान कहे—क्यों चेहरा है मुर्झाया ?
जान बूझ कर तुमने ही मरवाया।
वह लड़का कुछ सैनिक लेकर है आया।
डूबो दी उसने लुटिया आज हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०४॥

करनी का फल तो आखिर सब ही पाये।
हाथ मसलता सेठ चला घर जाये।
विप्र शिवानन्द के घर आनन्द छाये।
आके सुहागिन मंगल गान सुनाये।
चन्द्रमुखी मन छाई खुशियाँ भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०५॥

सेठ किरोड़ीमल का सपना टूटा।
अभयसेन ने हाय मुझे अब लूटा।
भाग्य मेरा उसके कारण ही फूटा।
अवश्य उखाड़ू एक दिन उसका बूटा।
सभी उतारू उसकी यहाँ खुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०६॥

आदर्शनगर अब सेठ चला है आया।
महीपति को उसने सारा हाल सुनाया।
पुत्र वधु दहेज सहित मैं लाया।
एक दुष्ट ने मुझको मार भगाया।
उसने दी है मुझको चोट करारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०७॥

नृपति बोला—कोटवाल तुम जाओ।
कौन दुष्ट वह अभी पकड़ कर लाओ।
मना करे तो कोड़े वहीं लगाओ।
अरे सेठ तुम मन में मत पछताओ।
हम रक्षा करने बैठे यहाँ तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०८॥

ले के सन्तरी कोटवाल है आया।
अभयसेन को देख वह मुस्काया।
महाराज ने हमें यहां भिजवाया।
चलो हमारे साथ अभी बुलवाया।
अभयसेन ने बात वहाँ स्वीकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२०९॥

चन्द्रसेन भी चला उधर ही आया।
अपने नगर को देख वह हर्षाया।
लोगों ने कंधे पर उन्हें उठाया।
मंत्री ने आकर अपना शीश झुकाया।
की रणसिंह ने उस दिन समझदारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२१०।।

मैं राजकाज पर ध्यान नहीं दे पाया।
अपनी प्रजा से अपयश मैंने पाया।
अग्रज पहले ठीक मुझे समझाया।
भोगों ने मुझको अंधा यहाँ बनाया।
त्याग महल को भगू करूं होशियारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२११।।

चन्द्रसेन को राजमुकुट पहनाया।
कोटवाल ले अभयसेन को आया।
देख नृपति तनिक वह चकराया।
पहचाना तो अपना शीश झुकाया।
करते जय जयकार सभी दरबारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२१२।।

इस लड़के का चेहरा जाना जाना।
कब कहाँ मिले पर लगता है पहचाना।
नृप बोले—सच्ची-सच्ची बात बताना।
हो कौन कहाँ से हुआ तुम्हारा आना ?
अभय कँवर ने बात बतादी सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२१३।।

नृप चन्द्रसेन उठकर नीचे है आया।
अभयसेन को अपने गले लगाया।
सुत देख तुम्हें मन मेरा तो हर्षाया।
मात तुम्हारी कहाँ पता चल पाया।
सभासदों के मन उत्कंठा भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२१४।।

बीती घटना उसने वहाँ सुनाई।
सेठ किरोड़ीमल की आफत आई।
क्षमा करें नरनाथ भूल हो जाई।
अब नहीं करूं अन्याय बात बतलाई।
राजदण्ड की महिमा सबसे न्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२१५।।

नृपति बोले सेनापति तुम जाओ।
गधे के ऊपर इसको यहाँ घुमाओ।
सम्पत्ति सेठ की जब्त सभी कर लाओ।
लाकर के निर्धन लोगों में बंटवाओ।
दुष्ट सेठ ने की सबसे मक्कारी।
कर्मों को रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२१६॥

दिया सेठ का साथ सभी पछताये।
जैसी करनी वैसा ही फल पाये।
अभय कंवर अब क्षमा उन्हें करवाये।
सब महाराज की जय जयकार लगाये।
चरण छूते सब उनके बारी बारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२१७॥

विप्र भवन में महाराज चल आये।
शिवानन्द को आकर गले लगाये।
चन्द्रमुखी को देख बहुत हर्षाये।
अभयसेन के साथ महल में आये।
गूंजे घर घर गीत मंगलाकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२१८॥

आदर्शनगर ने उत्सव बड़ा मनाया।
जन जन में उत्साह नया फिर आया।
चोर उचक्का ठहर नहीं वहाँ पाया।
महाराज ने सबको सुखी बनाया।
बीती घटना कहो स्वामी अब सारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२१९॥

चलते वक्त नहीं ध्यान इष्ट का आया।
चल पड़ा अश्व से मैं रानी इतराया।
गिरा जलधि में ध्यान मुझे तब आया।
नवकार मंत्र को उच्च स्वरों में गाया।
मैं महामंत्र की महिमा पर बलिहारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२०॥

लकड़ी का बक्सा हाथ मेरे था आया।
उसके सहारे मैंने तट को पाया।
श्रम से मेरा जीव बहुत घबराया।
इक मछुवारा मुझे खेंचकर लाया।
मेरे खातिर बना वह उपकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२१॥

उसको मैंने अपनी व्यथा सुनाई।
तब उसने ही सारी बात बताई।
भूपति विक्रम तो गये स्वर्ग सिधाई।
जनता के खातिर बना वह दुःखदाई।
हम पर कर का बोझ डाला है भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२२॥

कुछ लोगों को अपनी ओर मिलाया।
मन चाहे उसने सिंहासन हथियाया।
और कोई उपाय समझ नहीं आया।
सभी सोचते किसको जाय बिठाया।
गुम विपदा में होती अकल बेचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२३॥

सिंहासन से वह आदेश सुनाये।
पकड़ चन्द्र को जिन्दा-मुर्दा लाये।
लाख अशर्फी हमसे वह नर पाये।
उसको ऊँचा औधा हम दिलवाये।
महानीचता उसने मन में धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२४॥

वेश बदलकर चला नगर में आया।
आतंकित मैंने हर जनमन को पाया।
देख राज्य की दशा हृदय घबराया।
दुःखी मंत्री को भी मैंने पाया।
हर ओर अराजकता फैली है भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२५॥

पीड़ित लोगों को मैंने पास बुलाया।
भाव संगठन का उनको समझाया।
कर्मचारियों को विरोध जताया।
मंत्री को लेकर सेनापति तब आया।
वे बोले हम क्या करें यह लाचारी।
कर्मों रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२६॥

बस नहीं हमारा उसके आगे चलता।
चन्द्रसेन से हर पल वह तो जलता।
वह होता तो राज्य मुझे नहीं मिलता।
हमको उसका साथ आज भी खलता।
मजबूरी कुछ समझे बंधु हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२२७॥

मैंने उनको सारा सच बतलाया।
पहचाना मुझको अपना शीश झुकाया।
पता चला रणसिंह बहुत घबराया।
कहाँ गया कुछ पता नहीं चल पाया।
ढूंढ रहे हैं सेवक गण बल धारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२२८।।

स्वर्गपुरी सम सारा नगर सजाया।
हाथी ऊपर बैठ यहाँ मैं आया।
मुझे देखकर नगर यह हर्षाया।
फिर से सुख साम्राज्य यहाँ पर छाया।
हर्षित हो गई सुनकर राजकुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२२९।।

तुमको मैंने सागर तट पर छाना।
इष्ट भूल कर पड़ा मुझे पछताना।
अहसान विप्र का मैंने मन में माना।
उसके घर का खाया तुमने खाना।
खुशी मिलन की मन में मुझको भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२३०।।

राजभवन में नृप ने विप्र बुलाया।
राज ज्योतिषी का पद उसे दिलाया।
बुलवाकर कप्तान हृदय हर्षाया।
जल सेना का नायक उसे बनाया।
देवयानी के मन में हर्ष अपारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२३१।।

शुभ कर्मों से जीवन बचा हमारा।
अंतः धर्म का लेवे सभी सहारा।
जान बूझ कर जीवन जाये मारा।
जीवन होता सभी जीवों को प्यारा।
हुई घोषणा अब तो नगर मझारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२३२।।

संध्या को जनता दरवार लगाये।
सैनिक कैदी सेठ पकड़ कर लाये।
नृप सजा कड़ी से कड़ी वहाँ फरमायें।
अभयसेन आ उनको अभय दिराये।
महाराज दो इनको देश निकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२३३।।

नित प्रजा भलाई में नृप समय बिताये।
कोई भी जन दु:खी नहीं रह पाये।
शिक्षालय में वालक पढ़ने जाये।
कई चिकित्सालय उनने खुलवाये।
प्रजा मुझे है निज प्राणों से प्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२३४॥

नशे वाजों का नशा हिरण हो जाये।
नशा वन्दी का नियम वहाँ बनवाये।
शत्रु भूप भी आज्ञा में आ जाये।
राजकोष था खाली वह भर जाये।
सत्य धर्म पर चले सभी अधिकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२३५॥

रणसिंह राज्य तज जहाँ भी जाता।
कोई भी नृप उसे नहीं ठहराता।
होकर अपमानित अपने पर पछताता।
दुर्व्यसनी आखिर में कष्ट उठाता।
दुर्व्यसनों से वुद्धि गई मम मारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२३६॥

कई दिनों तक उसने ठोकर खाई।
आखिर अग्रज की याद उसे है आई।
चन्द्रसेन आखिर है मेरा भाई।
कर क्षमा गले से लेगा मुझे लगाई।
उतर गई आखिर में सभी खुमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२३७॥

दुर्व्यसनों का वंधन उसने तोड़ा।
आदर्श नगर की ओर स्वयं को मोड़ा।
राज भवन के वाहर रोका घोड़ा।
सभी जनों को उसने कर है जोड़ा।
भैया आया मैं तो शरण तिहारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२३८॥

चन्द्रसेन ने उसको गले लगाया।
दुर्व्यसनों ने तुझको दु:खी वनाया।
अपनी करनी पर मैं खुद ही पछताया।

क्षमा मांगने पास आपके आया।
भूल ना पाया यादें अनुज तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२३९॥

नगर निवासी सुन-सुन कर हर्षाये।
भाई को भाई कैसे भला भुलाये।
सहयोग तुम्हारा सभी काम में पाये।
हो गया अनुज वह नही जुबां पर लाये।
मैं हूं अग्रज आज बड़ा आभारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२४०॥

अब राजारानी दृढ़ धर्मी बन जाये।
अभय सेन को राज काज समझाये।
नवकार मंत्र में हर पल ध्यान लगाये।
धर्म प्रेमी रणसिंह वहाँ हो जाये।
बीत रहे क्षण सबके ही सुखकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२४१॥

कर्मचारी भी अच्छा वेतन पाते।
राज्य सेवा में पूरा समय लगाते।
सन्त सती भी विचरण करते आते।
लेकर सेवा का लाभ सभी हर्षाते।
करने दर्शन जाते नर संग नारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२४२॥

एक दिवस नृप ने यह बात चलाई।
सभी योग्यता अभय सेन ने पाई।
वृद्धावस्था अपनी भी हो आई।
क्यों ना दें हम राज्य उसे संभलाई।
कहदो रानी इच्छा क्या है तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२४३॥

स्वामी आपने उत्तम भाव विचारा।
छीना आपने मुख से शब्द हमारा।
अभय सेन है गुणी सभी का प्यारा।
धर्म-ध्यान कर पाये यहाँ किनारा।
धर्म धरा के लिए बना उपकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२४४॥

शीश झुकाता वनमाली है आया।
आकर उसने यह सन्देश सुनाया।
आज बाग में मुनि मण्डल है आया।
शुष्कलता ने सुन्दर सुमन खिलाया।
खडे ठूंठ की हरी हो गई डारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२४५।।

धर्म घोष मुनि अपने नगर पधारे।
सचमुच अब तो जागे पुण्य हमारे।
दर्शन करके जीवन आज संवारें।
महामुनि वे तिर कर जग को तारें।
दर्शन करने भीड़ जा रही भारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२४६।।

चन्द्रसेन नृप रानी को बतलाये।
गज होदे चढ गुरुदर्शन को जाये।
विधिवत वंदन कर दोनों हर्षाये।
गुरुवर नैया अब तो पार लगाये।
राह बतायें जीवन की हितकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२४७।।

लक्ष चौरासी जीवायोनि बिताई।
तब जाकर के मानव योनी पाई।
इसके खातिर देव तरसते भाई।
मुक्ति का पथ लो तुम यहाँ बनाई।
जनम-मरण में दु:ख है अपरम्पारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२४८।।

गेंद की भाँति दशा यहां हो आई।
चारों गतियों में ठोकर कितनी खाई।
नहीं जीव समझे निशदिन समझाई।
संसार कीच में फंसा पड़ा ललचाई।
सुख चाहो तो तजो इसे संसारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ।।२४९।।

घर चोबारे धन का पड़ा खजाना।
इन्हें छोड़कर सबको इक दिन जाना।
विना धर्म की शरण पड़े पछताना।

भाव जगे तो देरी नहीं लगाना।
क्यों बीच भँवर में डोले नाव तुम्हारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२५०॥

नृप दम्पत्ति ने उठकर शीश नवाया।
ज्ञान आपका उतर हृदय में आया।
आके आपने चेतन यहां जगाया।
संयम लेने का हमने भाव बनाया।
राजमुकुट को देऊं आज उतारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२५१॥

हर्षित होकर नृप महलों में आये।
जो भी सुनता जय जयकार लगाये।
महाराज ने मन के भाव बताये।
आगार धर्म को तजकर के हम जायें।
अरणगार धर्म लेने की हृदय विचारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२५२॥

अभय सेन का मुखमण्डल मुर्झाया।
औचक ही विचार कहाँ से आया।
महामुनि ने लगता है भरमाया।
प्रजा चाहती अभी आपकी छाया।
हे माता ममता क्यों तुमने बिसारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२५३॥

तात-मात ने सुत को सब समझाया।
शुभ मुहूर्त में राज मुकुट पहनाया।
निर्धन खातिर राजकोष खुलवाया।
वन्दी जनों को अभयदान दिलवाया।
अब दीक्षा की होने लगी तैयारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२५४॥

राज महल के वैभव को विसराये।
गुरु-गुरुणी के चरणों में वे आये।
शुभ मुहूर्त में दीक्षा दोनों पाये।
सेवक गण भी पीछे-पीछे आये।
जागी भावना गुरुवर आज हमारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी ॥२५५॥

शुद्ध हृदय से संयम को स्वीकारा।
ज्ञानामृत की बहे हृदय में धारा।
बीता जीवन तप में उनका सारा।
पुण्यवान दम्पत्ति को नमन हमारा।
बीते रजनी आये भोर उजारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।।२५६।।

प्राज्ञ प्रसादे मुनि सोहन हर्षाये।
भव्य जीवों का जीवन सफल बनाये।
देव-गुरु संग धर्म हृदय को भाये।
यह धूप-छाँव जीवन में आये जाये।
वाणी पन्ना की बनी जगत उपकारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।।२५७।।

दो हजार चवालीस वर्ष यह प्यारा।
गुरुवर पन्ना का गूंजे ज्ञान नगारा।
शताब्दी वर्ष का घर-घर में जयकारा।
विजयनगर का चातुर्मास सुखकारा।
तप-त्याग-ज्ञान की महके केसर क्यारी।
कर्मों की रेखा टरे कभी नहीं टारी।।२५८।।





२ | महा उपकारी

[तर्ज—लावणी]

जन मन की भलाई में जो कदम उठाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये।।

उज्जैनी नरनाथ विक्रम महाराया।
करके जग उपकार नाम दीपाया।
आज भी उनका नाम जगत में छाया।
विक्रम संवत् चला उनसे ही आया।
जो उनके जैसे भाव हृदय में लाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये।। १ ।।

विक्रम से पहले थे उज्जैनी राया।
उनकी सभा में एक नजूमी आया।
आसन देकर उसे वहाँ बैठाया।
मेरे बाद में कौन बने महाराया।
लड़की का लड़का यह उत्तम पद पाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये।। २ ।।

यह सुना भूप ने रोष हृदय में आया।
निकटस्थ दासी को अपने पास बुलाया।
क्या करना है उसको सब समझाया।
कहा वैसा दासी ने कदम उठाया।
मौका पाकर सुत को वह ले जाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये।। ३ ।।

किधर गया सुत पता नहीं चल पाया।
काल बली ने नृप को ग्रास बनाया।
महाराज ने हाय पुत्र नहीं पाया।
सिंहासन पर किसे जाय बैठाया।
महामंत्री परिषद को यह समझाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये।। ४ ।।

योग्य व्यक्ति को देख महल में लाये।
राजमुकुट पहनाकर सब हर्षाये।
उसी रात वेताल देव वहाँ आये।
पकड़ राजा को पल में मार गिराये।
बने राजा वह मृत्यु मुख में आये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। ५ ।।

उस उज्जैनी के सिंहासन को पाना।
मृत्यु के मुख में जिन्दा ही है जाना।
महल मृत्यु घर सबने ही पहचाना।
बिन राजा के महल लगे वीराना।
हर घर से हम राजा यहाँ बनाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। ६ ।।

विक्रम भी पल कर के अब बढ़ जाये।
समय आने पर वह दासी मर जाये।
कह अनाथ विक्रम को लोग चिढाये।
लगे तीर सी बातें वह घबराये।
छोड़ ग्राम को नगर उज्जैनी आये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। ७ ।।

भाग्य खेंच कर उसे उज्जैनी लाया।
घर कुंभकार के उसने भोजन पाया।
कुंभकार ने बेटा कह के बैठाया।
खाट बिछाकर उसको वहाँ सुलाया।
अर्द्ध रात्रि में उसकी नींद उड़ जाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। ८ ।।

दी घर में से सिसकी उसे सुनाई।
क्या हो गया कुछ नहीं समझ में आई।
पहुँच द्वार पर थपकी एक लगाई।
कहा कुम्हारिन ने क्या बोलो भाई।
माई रोने का कारण क्या बतलाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। ९ ।।

कल नृप उज्जैनी पुत्र बने मम प्यारा।
रात होते ही जायेगा वह मारा।
पिशाच महल में बैठा है हत्यारा।
इस उज्जैनी का कोई नहीं सहारा।
महाकाल की लगता नहीं चल पाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। १० ।।

माता चिन्ता तजो और सो जाओ।
कल अपने सुत की जगह मुझे भिजवाओ।
बेटे मेरे जाओ तुम सो जाओ।
मत ऐसा कहकर मुझ पे पाप चढाओ।
विक्रम बोले हिम्मत हम ही दिखायें।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ ११ ॥

वहाँ भोर होते ही महामंत्री आया।
विक्रम ने अपने मन का भाव बताया।
रथ के अन्दर विक्रम को बैठाया।
राजमहल में लाकर के नहलाया।
राजपुरोहित राजमुकुट पहनाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १२ ॥

सारा उज्जैनी देख उसे हर्षाया।
हाथी ऊपर नृप को गया बैठाया।
पूरे नगर में विक्रम गया घुमाया।
जिसने देखा वही अश्रु भर लाया।
विक्रम सबको हाथ जोड़ता जाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १३ ॥

विक्रम मंत्री को अपने पास बुलाये।
वेताल देव की बात मुझे बतलायें।
मंत्री कहे महाराज क्षमा करवायें।
नृप जो भी बनता वो ही मारा जाये।
रक्षा करे भगवान आप बच जायें।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १४ ॥

विक्रम बोला—आप नहीं घबरायें।
सारे शहर में इत्र अभी छिड़कायें।
पूरा ही बाजार आप सजवायें।
भरपूर मिठाई महलों में रखवायें।
जो दे नृप आदेश मंत्री करवाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १५ ॥

रात होते ही देव महल में आया।
नगरी के संग महल देख हर्षाया।
पकवानों को उसने पेट भर खाया।
सेज सुमन की देख पाँव फैलाया।
विक्रम चलकर पास देव के आये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १६ ॥

कहा देव ने निर्भय नृप तुम आओ।
पूछो कोई भी प्रश्न पूछना चाहो।
कितनी है मेरी उम्र आप बतलाओ।
यदि नहीं जानते तो जा पता लगाओ।
हम प्रसन्न हैं पता लगा बतलायें।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १७ ॥

देव वहां से विदेह क्षेत्र में आया।
श्री मन्धर स्वामी के पास प्रश्न दोहराया।
वर्ष एक सौ बीस उनने बतलाया।
प्रश्न पूछ कर देव महल में आया।
विक्रम बैठा प्रभु का ध्यान लगाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १८ ॥

देव आके विक्रम को वह बतलाये।
विक्रम बोला कम ज्यादा करवाये।
कहा देव ने नहीं ऐसा हो पाये।
तलवार खेंचकर विक्रम अब हर्षाये।
पकड़ देव को नीचे वह गिराये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ १९ ॥

मेरी नहीं मृत्यु आज तेरी है आई।
हाँ भरले वरना तुझे छोड़ू मैं नाहीं।
सेवक बनकर रहूं चरण के मांही।
हाँ भर देव ने अपनी जान बचाई।
पुण्यवान के वश में देव हो जाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ २० ॥

नृप होकर निशंक वहां सो जाये।
उगते ही सूरज सेवक गण हैं आये।
निश दिन भाँति सारे सलाह मिलाये।
दाहकर्म की सामग्री मंगवाये।
महामंत्री भी पहुँचे हैं घबराये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ २१ ॥

विक्रम को जीवित देख मंत्री हर्षाया।
भाग्यशाली हैं आप देव नहीं आया।
देव को अपना सेवक रात बनाया।
यह कह कर के विक्रम नृप मुस्काया।
यह सुन सेवक जय जयकार लगाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ॥ २२ ॥

नृप ने ताले जलों के खुलवाये।
निर्धन को धन देकर धनी बनाये।
उज्जैनी में उत्सव लोग मनायें।
प्रजा जनों में करुणा भाव जगाये।
कुंभकार मन खुशियाँ नहीं समाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। २३ ।।

विक्रम नृप जीवों पर दया दिखाता।
नहीं किसी का कष्ट देख वह पाता।
हर जन नृप गुण रह रह कर के गाता।
विक्रम व बेताल में जुड़ गया नाता।
दुःखी राज्य में नहीं कोई रह पाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। २४ ।।

विक्रम राजा हुआ जगत यशधारी।
विरला ही होता उस जैसा उपकारी।
धन्य धन्य धरती है यह हमारी।
नृप विक्रम के हम सब हैं आभारी।
जो शुद्ध भाव से विक्रम गाथा गाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। २५ ।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' मन भाये।
विक्रम नृप की कथा हृदय बस जाये।
कथा बना बुधवाड़ा मांही सुनाये।
इगतालीस नव वर्ष रंग बरसाय।
विक्रम जैसे भाव हृदय जो लाये।
वह नर जग में नाम अमर कर जाये ।। २६ ।।

३ मुक्ति का मार्ग

[तर्ज—लावणी]

सब ग्रन्थों का सार है, आतम शुद्ध बनाय।
बिना शुद्ध आतम बने, मनुज मुक्ति ना पाय॥

चाहे हम दस बार तीर्थ कर आये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये॥

यह महाभारत की कथा बहुत सुखदाई।
श्री धर्मराज को कृष्ण रहे समझाई।
बाद युद्ध के मायूसी थी छाई।
महाराज युधिष्ठिर चिन्तित दिये दिखाई।
कर जोड़ कृष्ण से कहे—राह बतलायें।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये॥ १ ॥

बन्धु-मित्रों की सभा जुड़ी थी भारी।
मौन बने बैठे थे सब नर नारी।
कहे युधिष्ठिर पाप किया है भारी।
उस रण भूमि में कितने नर दिये मारी।
अब अध से आत्मा तड़फ तड़फ है जाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये॥ २ ॥

मन करता है तीर्थ करने को जाऊँ।
अपने मन में सुख तब ही मैं पाऊँ।
जल्दी ही मैं लौट वहाँ से आऊँ।
हस्तिनापुर का फिर मैं राज्य चलाऊँ।
न्याय नीति से निश दिन राज्य चलाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये॥ ३ ॥

स्वीकार हमें है आज्ञा आपकी सारी।
आज्ञा तो दें करें सभी तैयारी।
चिन्तित मुद्रा में बोले धर्म अवतारी।
कैसा रहेगा संग चलें गिरधारी।
चलो अनुज उनसे पूछ हम आये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पायें ॥ ४ ॥

पंच भ्रात उठ कृष्ण पास में आये।
हाथ जोड़कर उनको शीश नवाये।
करलें अड़सठ तीर्थ भाव दरसाये।
हे माधव ! संग चलने की फरमायें।
कियें हैं हमने पाप सभी धुल जाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ ५ ॥

लगे सोचने सुनकर कृष्ण मुरारी।
क्या कह रहे थे पाण्डव आ इस बारी।
अन्तर के पाप को कैसे देंगे उतारी।
युद्ध विजय की इन पर अभी खुमारी।
बोले उनसे कृष्ण आप ही जायें।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ ६ ॥

करने जरूरी कार्य नहीं जा पाऊँ।
एक काम करना है तुम्हें बताऊँ।
यह तुम्बी देकर के मैं तो हर्षाऊँ।
करवाना इसको स्नान यह समझाऊँ।
मेरे स्थान पर इसको ही नहलायें।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ ७ ॥

उचित आपकी बात इसे नहलाये।
फिर हम अपना आगे कदम बढ़ाये।
सुनकर उनकी बात कृष्ण मुस्काये।
लेकर आज्ञा तीर्थाटन को जाये।
खुद धर्मराज तुम्बी को चले उठाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ ८ ॥

वे हरिद्वार, बद्री, केदार में जाये।
गये गया फिर गंगा सागर आये।
नहला कर तुम्बी को फिर वे नहाये।
अड़सठ तीर्थ ये करके वापिस आये।
हस्तिनापुर में खुशियाँ नहीं समाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ ९ ॥

देख कृष्ण को मन उनका हर्षाया।
त्रिखण्डाधीश ने सबको गले लगाया।
उच्चासन पर सबको वहाँ बैठाया।
तीर्थों का गुणगान सभी ने गाया।
कृपा आपकी रही तीर्थ कर आये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ १० ॥

हे धर्मराज क्या तुम्बी तीर्थ कर आई।
आपके संग क्या यह तीर्थों में नहाई।
पाण्डव बोले—भूल कैसे हम जाई।
तीर्थों में तुम्बी हमसे पहले नहाई।
हमसे पहले डुबकी यह लगाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ ११ ॥

कड़वी तुम्बी तीरथ करके आई।
मधुर हो गई होगी यह तो भाई।
इसका ही प्रसाद लेओ तुम पाई।
देख इसे खुशियाँ मेरे मन छाई।
तुम्बी के टुकड़े कृष्ण बाँटते जायें।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ १२ ॥

खुश होकर के पाण्डव हाथ बढ़ाये।
प्रभु का है प्रसाद मुख में रख जाये।
तुम्बी की कड़वाहट मुख में छाये।
मन करे थूकना थूक नहीं वे पाये।
वे एक दूजे को देख बहुत घबराये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ १३ ॥

क्या कारण प्रसाद प्रभो मुख माँही।
धर्मराज कहे गले उतरता नाहीं।
कड़वापन इतना जीभ रही घबराई।
इतनी कड़वी चीज चखी कभी नाहीं।
थूकें या निगलें जल्दी आप बतलायें।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ १४ ॥

कहे कृष्ण क्या इसको नहीं नहलाया।
धर्म पुत्र कहे—भूल नहीं मैं पाया।
कड़वापन इसका फिर क्यों नहीं नसाया।
तीर्थों का इसमें असर नहीं क्यों आया।
धर्मपुत्र कहे अन्दर जल नहीं जाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ॥ १५ ॥

श्री कृष्ण महाराज ने कहा सुनो दे ध्यान।
श्लोक वहाँ पर बोलकर, दिया उन्हें सद् ज्ञान ।।
आत्मा नदी संयम तोय तूर्णा: सत्या वहा शील तटा दयोर्मि।
मत्राभिषेकं करु पाण्डुपुत्र: न वारिणा शुद्ध यति न्यान्तरात्मा ।।

आत्म तीर्थ में डुबकी आप लगाये।
जड़ तीर्थों से भला नहीं हो पाये।
जल तो केवल तन का मैल हटाये।
स्वाध्याय से अन्तर मल हट जाये।
अतः शील तप संयम को अपनाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ।। १६ ।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' बताये।
अन्तर की शुद्धि हेतु कदम उठाये।
कषाय और कलमष को आप मिटायें।
सत्संगति कर जीवन सफल बनायें।
तभी आत्मा अजर अमर पद पाये।
मन शुद्ध हुए बिन मुक्ति हम ना पाये ।। १७ ।।



४ | स्वार्थी संसार

[तर्ज—लावणी]

स्वार्थ भरा संसार किसी का नाहीं।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही॥

वे आके गरज में सात करेंगे बातें।
गरज में जुड़ते टूटे हुए सब नाते।
मीठी मीठी करेंगे पास आ बातें।
मुख कमल खिलेंगे निकट आपके आते।
स्वार्थ निकला देंगे नहीं दिखाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही॥ १॥

कथा एक यहाँ मेरे ध्यान में आई।
कैसा यह संसार जान लो भाई?
शार्दुलपुर एक शहर भव्यता पाई।
शार्दुलसिंह नर नाथ रहे सुखदाई।
प्रजाजनों की सेवा कर हर्षाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही॥ २॥

मंत्री कोमल राजकाज का ज्ञाता।
वह राज्य का राज राज रख पाता।
रखता सद् व्यवहार सदा मन भाता।
प्रेम भाव का रखे नित्य वह नाता।
ख्याति राज्य की उसने खूब बढ़ाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही॥ ३॥

उसी शहर में श्रेष्ठी धर्म-धन धारी।
लक्ष्मी घर की नार बड़ा व्यौपारी।
धन का लेता लाभ सदा शुभकारी।
दीन दुःखी के लिए था करुणाधारी।
देख दुःखी को लेवे अश्रु बहाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही॥ ४॥

पुत्री के संग एक पुत्र था पाया।
कंचन-धन्ना उनका नाम रखाया।
कंचनपुर में कंचन को परणाया।
वह सुशीला निज सुत हेतु लाया।
अमन चैन छा रहा था घर के मांही।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ५ ॥

समय चक्र तो नित्य घूमता जाये।
कल जो देखे नजर आज ना आये।
सेठ सेठानी भी परलोक सिधाये।
धन्ना भी धन हीन यहाँ हो जाये।
मुनिमों ने कर दी मन की चाही।
करके परीक्षा देख लो जग के मांही ॥ ६ ॥

एक एक कर मुनीम खिसक सब जाये।
देने वाले नहीं हाट पर आये।
मांगने वाला धरना नित्य लगाये।
सब कुछ खोकर धन्ना समय बिताये।
नहीं कर्ज में दे अब कोई पाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ७ ॥

सगे सम्बन्धी पास नहीं अब आये।
बन करके अंजान अलग छिटकाये।
कभी समय पर रोटी ना मिल पाये।
पत्नी के संग अश्रु वह बहाये।
सास श्वसुर ने पत्नी ली बुलवाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ८ ॥

एक दिवस मन में विचार बनाया।
धन्ना चलकर कंचन के घर आया।
फटे पुराने वसन जीर्ण लख काया।
इक पल तो पहचान कोई ना पाया।
पहचानो कंचन मैं तेरा भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ९ ॥

बड़ी बहिन के चरण में शीश झुकाया।
खरा खोटा कंचन ने उसे सुनाया।
इस हालत में क्यों मेरे घर आया।
तेरे कर्म ने कंगला मुझे बनाया।
तुझे देखकर शर्म मुझे तो आई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ १० ॥

धन्ना कंचनपुर के बाहर आया।
सन्त वृन्द को देखा शीश झुकाया।
नवकार मंत्र का मर्म उसे समझाया।
धन्ना ने अपना जीवन सफल बनाया।
धर्म भावना अन्तर में अपनाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। ११ ।।

नवकार मंत्र का निशदिन ध्यान लगाता।
किसी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाता।
त्याग तपस्या में वह समय बिताता।
मेहनत से जी वह नहीं कभी चुराता।
खुशियां लेने लग गई फिर अंगड़ाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। १२ ।।

एक दिवस वह नगर विशाला आया।
देख शहर की छटा वह हरसाया।
चलता चलता बीच शहर में आया।
एक सेठ से काम हाट पर पाया।
उसने गाथा अपनी सभी सुनाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। १३ ।।

काम सेठ को उसका बड़ा ही भाया।
खुश होकर के हिस्सेदार बनाया।
खूब मुनाफा सेठ ने वहां कमाया।
धर्म से अपना जीवन बहुत सजाया।
शाख पेढ़ी की उसने नित्य बढ़ाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। १४ ।।

पिता की भाँति लाखों वह कमाये।
कई मुनीम अब आ व्यापार चलाये।
पांवों में पत्नी आकर के गिर जाये।
अपनी भूल पर रह रहकर पछताये।
मैंने चाहा पर माना नहीं था भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। १५ ।।

उस वक्त सहेली कंचन की है आई।
देख धन्ना को अचरज में वह आई।
अरे सहेली क्या यह तेरा भाई।
शक्ल तो तेरी इसमें देती दिखाई।
कंचन बोली—यह नहीं मेरा भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। १६ ।।

कंचन पास सहेली के साथ आई।
खेंच ले गई दूर पकड़ कलाई।
पीहर का हाली है लाया मिठाई।
कंचन ने उसको खड़े खड़े खिलाई।
धन्ना सोचे रही वहिन वह नाहीं।
करके परीक्षा देख लो जग के मांही ॥ १७ ॥

खड़ा खड़ा ही निकल वहां से आया।
घना तमस नैनों में उसके छाया।
एक हाली को खड़ा सामने पाया।
स्वार्थ का संसार उसने बतलाया।
स्नेह वाणी सुन खुशी हृदय में छाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ १८ ॥

कर पकड़ के हाली अपने संग में लाया।
अन्य हालियों के संग उसे बैठाया।
बड़े प्रेम से भोजन उसे खिलाया।
कई वार मैं नगर आपके आया।
स्नेह आपका रहा नयन में छाई।
करके परीक्षा देख लो जग के मांही ॥ १९ ॥

तुमने भाई भोजन मुझे कराया।
रोटी के संग साग फली का खाया।
सिर मेरे अहसान तुम्हारा आया।
रोटी देकर तुमने मुझे जिलाया।
अहसान तुम्हारा मैं भूलूंगा नाहीं।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ २० ॥

निर्धनता में अपने दूर हुए हैं।
जन्म के रिश्ते सारे चूर हुए हैं।
अपने ही अपनों पर क्रूर हुए हैं।
सभी स्वार्थी जग में नूर हुए हैं।
आज वहिन भी ना पहचाने भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ २१ ॥

मेरे मन पर बना हुआ सब लेखा।
स्वार्थ भरा संसार मैंने है देखा।
अपनों ने ही मुझे दूर जा फेंका।
पर मैंने तो घुटना कभी ना टेका।
सम्पति मैंने अतुलित यहां कमाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ २२ ॥

पत्नी ने पति को इक दिन समझाया।
नगर जाने का मानस पुनः बनाया।
हिस्सा लेकर वह नगर में आया।
फिर उसने अपना व्यापार जमाया।
नये मुनीमों की टोली बुलवाई।
करके परीक्षा देख लो जग के मांही ।। २३ ।।

सेठ विशाला परिजन के संग आया।
धन्ना सेठ से आदर बड़ा ही पाया।
कई दिनों तक नगर में जश्न मनाया।
लेकिन बहिन को भूल नहीं वह पाया।
एक दिवस मिलने की मन में आई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। २४ ।।

कंचनपुर की ओर चला वह आया।
दास दासियाँ सेवक गण को लाया।
नगरी के बाहर तम्बू बड़ा लगाया।
धन्ना बैठा आम्र तरु की छाया।
कुछ महिलायें नीर भरन को आई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। २५ ।।

कंचन की दासी का हुआ है आना।
धन्नाजी है उसने झट पहचाना।
घट भर कर के हो गई पुनः रवाना।
सेठानी को जाकर हुआ बताना।
नगरी बाहर आये आपके भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। २६ ।।

देखे मैंने उनके ठाठ निराले।
भूपति जैसे उनने डेरे डाले।
सुन्दर अरबी घोड़े उनने पाले।
स्वर्णाभूषण पहने उनने आले।
नगर के बाहर देखो जल्दी जाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। २७ ।।

ठाठ भाई का देखा बड़ा निराला।
नगर के बाहर ठहर गये क्यों लाला ?
तुमको मैंने अपनी गोद में पाला।
तू अनुज मेरा अब भी भोला भाला।
आग्रह करके सबको घर में लाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। २८ ।।

खुशी खुशी भोजन तैयार कराया।
जीजा के संग में भाई को बैठाया।
स्वर्ण थाल में हलवा गया सजाया।
खीर-रायता उसने वहां बनाया।
कई सब्जियां कतली भी बनवाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ २९ ॥

देख थाल को धन्ना भी मुस्काया।
खोल के कंठी हलुवा उसे खिलाया।
कहे वहिन नहीं रहस्य समझ में आया।
बोला भाई तुमने इनको जिमाया।
एक दिन भूखा गया तुम्हारा भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ३० ॥

भाई का सम्बन्ध नहीं था जाना।
अपने पीहर का हाली मुझको माना।
कंगला कहकर दिया तुम्हीं ने ताना।
स्वार्थ का संसार मैंने पहचाना।
सुनकर बातें बहिन गई शरमाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ३१ ॥

भूल हो गई क्षमा करो तुम भाई।
धन के मद में सोच नहीं कुछ पाई।
धन का पर्दा रहा नयन पर छाई।
मुझ अंधी को कुछ ना दिया दिखाई।
टप टप आंसू गिरे नयन से आई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ३२ ॥

जीजा साले ने भोजन फिर खाया।
हाली को ढूंढ़ा अपने पास बुलाया।
देकर उसको द्रव्य वह हर्षाया।
तुमने दुःख में स्नेह भाव दर्शाया।
रत्नाभूषण दिये वहिन के तांई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ३३ ॥

मिल के वहिन से पुनः नगर में आया।
सगे सम्बन्धी परिजन सबको पाया।
धन्ना से सम्बन्ध वहां बतलाया।
सुनकर धन्ना मंद मंद मुस्काया।
पहले तुम गये कहाँ थे भाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ॥ ३४ ॥

स्वार्थ का संसार मैंने है जाना।
दुःख में कोई नहीं सत्य पहचाना।
भाई-बहिन, मामा हो चाहे नाना।
स्वार्थ में अब डूबा यह जमाना।
जन हित में दूँ सम्पति सभी लुटाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। ३५ ।।

अपनी कमाई संवर मांही लगाये।
दीन-दुःखी को सुख निशदिन पहुँचाये।
शिक्षा-चिकित्सा के साधन बनवाये।
धर्म कार्य में धन का लाभ उठाये।
धन्ना की महिमा दे नित्य सुनाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। ३६ ।।

धर्म घोष मुनि नगर बाग में आये।
धन्ना भी दर्शन करने को नित जाये।
सुनकर वाणी दम्पत्ति मन हर्षाये।
अपने मन में दीक्षा भाव जगाये।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' हर्षाई।
करके परीक्षा देखलो जग के मांही ।। ३७ ।।



५ | बुद्धि-बल

[तर्ज—लावणी]

सुन्दर सूरत से नर की कीमत नांहीं।
नर बुद्धिबल से बड़ा बने जग मांही॥

ज्ञानावरणी कर्म आगे जब आये।
छः कारण से यहाँ मानव बँध जाये।
अलग अलग है भेद सभी बतलाये।
सुनकर के वचना गुरुवर नित समझाये।
सत्य धर्म के पथ का बने जो राही।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही॥ १ ॥

ज्ञान और ज्ञानी से द्वेष मन लाये।
दूजा उनका प्रत्यनीक बन जाये।
उपकार ज्ञान अरु दाता का छिपाये।
अन्तराय और अशातना बनाये।
विसंवाद भी करे सदा हरषाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही॥ २ ॥

कारण पा आवरण ज्ञान पर आये।
दस प्रकार से भोगे जीव पछताये।
घ्राण, चक्षु, श्रुत, रसना, स्पर्श बताये।
इनके ज्ञान पर सदा आवरण छाये।
दे कारण पर ध्यान हृदय के मांही।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही॥ ३ ॥

कारण से जो बचे ज्ञान उपजाये।
ज्ञानी जन जीवन में खुशियां पाये।
एक कृषक के ठाठ बड़े हो पाये।
खेतों की मिट्टी सोना नित उपजाये।
सुन्दर सुशील मेहनतकश नारी पाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही॥ ४ ॥

तीन पुत्र भी पाये प्यारे प्यारे।
मात-पिता की आँखों के वे तारे।
पुत्र तीनों ही हो गये योग्य हमारे।
करु शादी क्यों रखूं इन्हें कंवारे।
सुन्दर कन्याएं मिली उसे मन चाही।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग माँही ।। ५ ।।

करके शादियाँ बहुएं घर में लाया।
देख बहू को उसका मन हर्षाया।
लख पत्नी बीमार हृदय भर आया।
कौन होनी को टाल जगत में पाया।
मूंदे उसने नयन मायूसी छाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। ६ ।।

उठ गया सास का सिर ऊपर से साया।
हमें सेवा का लाभ नहीं मिल पाया।
कृषक सोचता घर यह लगे पराया।
बहुओं को भी परख नहीं मैं पाया।
चिन्तित रहता हर पल वह तो भाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। ७ ।।

बहुएं खिचड़ी अपनी अलग पकायें।
एक दूजी पर निशदिन रोब जमायें।
सभी श्वसुर का पूरा ध्यान रखायें।
सोचे घर की कुंजी को पा जायें।
होवे घर में अब तो हाथापाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। ८ ।।

अर्थ अनर्थ का मूल गया बतलाया।
धन के खातिर पल-पल मन ललचाया।
कृषक खेत से लौटा घर को आया।
दो बहुओं को किच किच करता पाया।
मंझली बोली अच्छी धौंस जमाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। ९ ।।

देख श्वसुर को शान्ति वहाँ पर छाई।
बोले श्वसुर क्यों घर में आग लगाई।
खाओ-पीओ तुमको नहीं मनाई।
बढ़े कलह तो होवे जगत हंसाई।
अपनी भूल पर बहुएं सब पछताई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। १० ।।

घर आंगन में उसने खाट बिछाया।
तीनों बहुओं को आपने पास बुलाया।
खड्डे का पानी काम कभी ना आया।
सागर से ही मानसून बन पाया।
बिखरे धन की महिमा भी घट जाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग माही ।। ११ ।।

मेरे प्रश्न का जो उत्तर दे पाये।
सही उत्तर से समझदार कहलाये।
सिद्ध योग्यता यदि नहीं कर पाये।
तो मेरे सामने नहीं भूलकर आये।
मैं जो पूछूं बात देय समझाई।
नर बुद्धिबल से बड़ा बने जग मांही ।। १२ ।।

सुनकर तीनों बात हृदय हर्षाई।
हमको है स्वीकार देय फरमाई।
समाधान जो करे यहाँ समझाई।
देना कुंजी उसे आप संभलाई।
मानेगी हर बात उसकी बतलाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। १३ ।।

अपनी वस्तु दूर कैसे यहां जावे।
बहुत दूर तक स्वर उसका सुन पावे।
बांग मुर्गे की पहली बहू बतलावे।
कुत्ते का भौंकना मंझली उठ समझावे।
महिमा रोटी की तीसरी ने समझाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। १४ ।।

रोटी खिलाकर मीठी वाणी बोले।
दशों दिशा में फैले होले होले।
बन्द द्वार भी उसके खातिर खोले।
मृदु वाणी ही मीठी मिश्री घोले।
कृषक हृदय खुशियाँ नहीं समाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। १५ ।।

तुझ से प्रश्न का समाधान है पाया।
यह कुंजी लो घर तुमको संभलाया।
बुद्धि बल से सही उत्तर बतलाया।
बड़ी और मंझली को सब समझाया।
करामात सब बुद्धि की है भाई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। १६ ।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' समझाये।
घर आये को भोजन आप कराये।
बोले मीठे बोल खुशी नर पाये।
ऐसे नर के कर्म नहीं बंध पाये।
शुभ भावों से महके मन अमराई।
नर बुद्धि बल से बड़ा बने जग मांही ।। १७ ।।



६ | बुद्धि की महिमा

[तर्ज—लावणी]

बुद्धि की महिमा सुनो सभी नर नारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ।।

शहर अजीतपुर एक बड़ा गुलजारी।
अजीतसेन भूपाल प्रजा हितकारी।
पतिव्रता गुणवान गुणावली नारी।
दीन दुःखी की सार करे हरबारी।
करती आशा पूर्ण प्रजा की सारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ।। १ ।।

सन्तान एक ही सुन्दर राजकुमारी।
पढ़ लिख पाई उसने भी होशियारी।
एक शौक था बालपने से भारी।
कंठस्थ पहेली करूं हृदय में धारी।
निशदिन इसकी करे वह तैयारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ।। २ ।।

योग्य देख घर वर दूँ मैं परणाई।
तभी कुमारी ने यह बात सुनाई।
मैं करूं उसी संग व्याह यहाँ हर्षाई।
पूछूं पहेली उत्तर दे बतलाई।
या वो पूछे मैं करूं यदि इंकारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ।। ३ ।।

समाधान मैं करूं या उत्तर ना पाऊँ।
उस युवक को कैदी यहाँ बनाऊँ।
जब तक शादी मैं नहीं करने पाऊँ।
तब तक सूरज उसको नहीं दिखाऊँ।
यह करी घोषणा तात मात इस बारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ।। ४ ।।

राजकुमारी ने जो बात बताई।
वही घोषणा नृप ने है करवाई।
सुनी घोषणा युवकों के मन आई।
उत्तर देकर कँवरी ले हम पाई।
कुछ कहते नृप की मति गई है मारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी।। ५ ।।

युवक कई उमंग लिए हैं आये।
हो के निरुत्तर कैदखाने में जाये।
जो जाये वह कैदखाने को पाये।
अच्छे अच्छे देख यह घबराये।
रह गई कई की मन की मन में धारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी।। ६ ।।

युवकों को कैद में देख वह हर्षाये।
मुझको कोई जीत नहीं है पाये।
कर जोड़े युवक क्षमा क्षमा चिल्लाये।
राजकुमारी उनकी हँसी उड़ाये।
पर नृप मन में पीड़ा बढ़े अपारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी।। ७ ।।

नृप ने नगर में घोषणा यह करवाई।
सम्पूर्ण राज्य मैं दू उसको संभलाई।
कँवरी को निरुत्तर करदे जो भी आई।
वह बन जाये मेरा यहाँ जंवाई।
क्षत्रिय पुत्र ने अपने हृदय विचारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी।। ८ ।।

पिता पुत्र दो घर में समय विताये।
नहीं समय पर भोजन पूरा पाये।
पुत्र पिता से अपनी बात बताये।
आप कृपा से काम यह बन जाये।
बने बहू अब आपकी राजकुमारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी।। ९ ।।

देकर आशीर्वाद पिता हर्षाये।
घर से निकला शकुन अच्छे हो जाये।
जिसको देखे उसको ध्यान लगाये।
वह पहेली बना राज्य में आये।
बैठे सभा में बहुत वहाँ नर नारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी।। १० ।।

कँवर कहे पहेली का अर्थ बताये।
समाधान कर दे तो कैद कराये।
नहीं करे तो अपनी शर्त निभाये।
महाराज भी अपने कान लगाये।
सुनकर के मुस्काई राजकुमारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी॥ ११॥

श्याम वर्ण कृष्णा नहीं, चौमुख ब्रह्मा नाय।
वाहन जिसका है वृषभ, शिव भी ना कहलाय॥
षट्पदी भंवरा नहीं, नेत्र तीन ना ईश।
दो जिह्वा फणिपति नहीं, चार कान दो शीश॥
पांव अठारह शीश नौ, ता बिच लोचन एक।
या तो दो के तीन हों, या फिर दो के एक॥

सुनकर कँवरी विस्मय में भर आई।
क्या है उत्तर मन में ही घबराई।
ऐसी पहेली नहीं ध्यान में आई।
तुम्हीं बताओ हार मैंने है पाई।
नृप के मन में खुशी कि कँवरी हारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी॥ १२॥

सभी सभासद जय जयकार लगाये।
कैदी युवक त्वरित गये छुड़ाये।
हृदय भूप का गद्गद अब हो जाये।
तभी सभासद यह आवाज लगाये।
अर्थ बताकर देवो शंका टारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी॥ १३॥

वह बोला मैं घर से बाहर आया।
परवाल युक्त इक वृषभ सामने पाया।
काणा एक सवार देख हर्षाया।
आठ अंधों को उसके संग में पाया।
भूपति हर्षित हुआ बात सुन सारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी॥ १४॥

तभी भूप ने सेवक त्वरित पठाया।
उस युवक का तात चला है आया।
तब नृप ने उठ उसको गले लगाया।
आज आपने मुझको धन्य बनाया।
अब आप कीजिए कन्या ग्रहण हमारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी॥ १५॥

अब कुँवरी ने कँवर हृदय में धारा।
यह बुद्धि से काम बना है सारा।
नृप ने खुश हो सारा नगर संवारा।
गूंज उठा उस युवक का जयकारा।
राज्याभिषेक की होने लगी तैयारी।
सभी बलों में हैं बुद्धि बलकारी ॥ १६ ॥

राज्याभिषेक कर नृप रानी हर्षाये।
प्रभो भजन में अपना ध्यान लगाये।
बीते दिनों को कँवर भूल ना पाये।
दीन दुःखी की सेवा कर सुख पाये।
बुद्धि बल से लेवे काम सुधारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ॥ १७ ॥

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' मुस्काये।
दो सहस्र बयालीस वर्ष रंग बरसाये।
ब्यावर शहर के श्रावक हर्ष मनाये।
धर्म ध्यान कर जीवन सफल बनाये।
चातुर्मास में छाया आनन्द भारी।
सभी बलों में है बुद्धि बलकारी ॥ १८ ॥



७ | वाक्चातुरी

[तर्ज—लावणी]

यहाँ वाक्चातुरी जिन में आ जाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।।

एक भूप के मन में ऐसे आई।
नव बात सुनूं मैं नित्य सभा के मांही।
यह सोच घोषणा नगर मांही करवाई।
अनुक्रम से आकर देवे मुझे सुनाई।
नई बात पर स्वर्ण अशर्फी पाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। १ ।।

हर्षित होकर लोग महल में आते।
नृप को बातें नई नई बतलाते।
स्वर्ण अशर्फी भूपति से वे पाते।
मिलने वालों को आकर दिखलाते।
देख अशर्फी मानस कई बनावे।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। २ ।।

एक एक कर क्रम सबका ही आये।
नई कथा पर पुरस्कार सब पाये।
महामंत्री विप्र भोला घर जाये।
वारी आपकी कथा नई कल लाये।
राजभवन की रीति नीति समझाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ३ ।।

स्वभाव नाम की तरह भोला ने पाया।
मंत्री की बातें सुनकर वह घबराया।
होकर के उदास विप्र घर आया।
चिन्ता के मारे उसने कुछ ना खाया।
क्यों उदास हो तात बात बतलाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ४ ।।

बेटी नृप का यह सन्देशा आया।
नई कथा कहने को मुझे बुलाया।
अगर कथा मैं नई नहीं कह पाया।
इज्जत होगी धूल, अतः घबराया।
आज अंधेरी मम आँखों में छाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ५ ।।

तात आप निज चिन्ता को विसराओ।
कथा कहने को आप मुझे भिजवाओ।
मैं कहती हूं खूंटी तान सो जाओ।
कल मेरे हाथों स्वर्ण अशर्फी पाओ।
सुन पुत्री की बात विप्र हर्षाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ६ ।।

किरण भोर की जब भूमि पर आई।
वृक्षों की टहनी पर चिड़िया चहचाई।
की विप्र कन्या ने घर की सभी सफाई।
बर्तन मांझे, नीर कूप से लाई।
बना के भोजन तात संग में खाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ७ ।।

पहले अपने पिता से आज्ञा पाई।
फिर हर्षित होकर राजभवन में आई।
कहा भूप ने विप्र जगह तुम आंई।
पर क्यों आने में तुमने देर लगाई।
विप्र सुता ने सोचा वह बतलाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ८ ।।

आने हेतु घर से कदम वढ़ाया।
मेरा भावी पति उसी क्षण आया।
नहीं पिता को मैंने घर पर पाया।
समझ अतिथि घर मैंने ठहराया।
बचपन का सम्बन्ध वह बतलाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। ९ ।।

धर्म गृहस्थी का सम्मुख है आया।
मखमल का आसन देकर वहां बैठाया।
कर भोजन तैयार साथ ही खाया।
पनवाड़ी से मैंने पान मंगाया।
आवभगत पा उर आनंद वे लाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये ।। १० ।।

तत्क्षण उनके उदर शूल हुआ भारी।
कर कर के उपचार वहाँ मैं हारी।
तजे उन्होंने प्राण अक्ल गई मारी।
थी घर में अकेली मैं तो अबला नारी।
चिन्ता आपकी अलग अश्रु घन छाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये ।। ११ ।।

खड्डा खोदकर शव उसमें दफनाया।
लग गई भूख फिर खाना मैंने खाया।
मैं क्या करती समय नहीं मिल पाया।
देरी का कारण मैंने सब बतलाया।
विप्र कन्या अब मन ही मन मुस्काये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये ।। १२ ।।

ऐसा कैसे हो सकता नृप बोला।
संशय का मन में चलने लगा हिंडोला।
कथन कन्या का उसने मन में तोला।
बोला-लड़की तू तो झूठ का झोला।
तेरे कथन में सत्य नजर ना आये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये ।। १३ ।।

महाराज आपके राजभवन जो आये।
नई कथाएं जो जो भी यहाँ लाये।
सन्देह आप क्या उन पर भी कर पाये।
फिर क्यों मुझ पर विश्वास नहीं है लाये।
उनकी तरह ही सत्य समझ इन्हें जाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये ।। १४ ।।

जैसी वे थी इसको वैसी मानें।
अनकही कथा है सत्य यह भी जानें।
क्या सच है क्या झूठ नहीं पहचानें।
दे दें अशर्फी अब अपनी ना तानें।
सुनकर बातें नृप खुलकर हर्षाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। १५ ।।

नृपति ने दो ताली वहाँ बजाई।
एक सेविका शीश झुकाती आई।
स्वर्ण अशर्फी देकर करो विदाई।
वाक्चातुरी कन्या तुमने पाई।
सम्मान सहित इनको घर पहुंचाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। १६ ।।

सुना विप्र ने वह भी बहुत हर्षाया।
तूने बेटी मेरा मान बढ़ाया।
नृप कर तेरी चर्चा नहीं अघाया।
प्राज्ञ प्रसादे 'मुनि सोहन' ने गाया।
धर्म ध्यान कर जीवन सफल बनाये।
वह जन जग में निश्चय ही जय पाये।। १७ ।।





८ | मुक्ति की ओर

[तर्ज—लावणी]

जानबूझ क्यों नर भव व्यर्थ गुमाये ?
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ।।
जब तक है तू व्यस्त काम के मांही ।
तब तक छुट्टी पाये हरगिज नांही ।
हाय हाय कर जीवन रहा बिताई ।
धर्म ध्यान की बात हृदय नहीं आई ।
बन कोल्हू का बैल घूमता जाये ।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ।। १ ।।
संसार चक्र से मुक्ति पाना चाहे ।
पुण्य कर्म से खोल मुक्ति की राहें ।
घर गृहस्थी है पंक कमल बन जाये ।
धर्म ध्यान में जीवन यदि लगाये ।
एक गाथा से समझ आप अब जाये ।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ।। २ ।।
विचरण करते सन्त शहर में आये ।
आज्ञा पाकर ठहर भवन में जाये ।
गुणी सन्तों के दर्शन जो कर पाये ।
करवाने दर्शन परिजन को वे लाये ।
सुप्त हृदय भी दर्शन पा जग जाये ।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ।। ३ ।।
इरिया पथिक से निवृत जब हो पाये ।
गुरु आज्ञा शिष्य गोचरी जाये ।
लेते गोचरी एक भवन में आये ।
मत्थएण वंदामी स्वर सुनकर हर्षाये ।
कौन वोला वे समझ नहीं है पाये ।
गुमा दिया तो पुनः हाथ नहीं आये ।। ४ ।।

इधर उधर वे अपनी नजर दौड़ाये।
फिर वो ही आवाज वहाँ पर आये।
टिकी तोते पर नज़र सन्त फरमाये।
दया पालो ! जीवन को सफल बनायें।
कैसे पालूं दया आप बतलायें।
गुमा दिया तो पुनः हाथ नहीं आये ।। ५ ।।

मैं पिंजरे में कैद दया उर लाओ।
दया भाव की उक्ति सफल बनाओ।
कहकर के सेठ को मुक्त मुझे करवाओ।
हूँ बन्धन में आप ही आज छुड़ाओ।
सुन तोते की बात मुनि मुस्काये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ नहीं आये ।। ६ ।।

देख सन्त को सेठ ने वन्दन कीना।
श्रद्धा से आहार उन्हें अब दीना।
आवश्यक आहार मुनि ने लीना।
उपदेश सेठ को दिया मधुर रस भीना।
जीव दया में ज्ञानी धर्म बताये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ नहीं आये ।। ७ ।।

नहीं जीव हित बन्धन है हितकारी।
बन्धन में पड़ वो कष्ट उठाये भारी।
शुक तुमने पाला है गुण का धारी।
पर बन्धन उसके लिए न साताकारी।
पड़ा कैद में उसको मुक्त बनाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ नहीं आये ।। ८ ।।

रक्षक घर का हमने उसे बनाया।
कब क्या बोले उसको पाठ पढ़ाया।
घर का चौकीदार; वह कहलाया।
कौन घुसा घर में उसने बतलाया।
कौन आया है निकल कौन है जाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ नहीं आये ।। ९ ।।

शब्द श्रवण कर सजग बने हम सारे।
हो गये हम निश्चिन्त उसे सब पा रे।
हमें उठाता सुबह गीत वह गा रे।
प्यारा तोता हम तोते के प्यारे।
बात आप कुछ और हमें फरमाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ।। १० ।।

दिया मांगलिक सत्वर पात्र उठाया।
शुक को देखा अपना शीश हिलाया।
समझ गया शुक नैना नीर बहाया।
गुरु से पूछ के कहना तुम मुनिराया।
शायद गुरु ही रस्ता मुझे सुझाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये॥ ११॥

शिष्य गुरु के चरणों में अब आया।
चरण हुए फिर शुक का हाल बताया।
शुक ने गुरुवर आपसे है पुछवाया।
कोई तरीका ध्यान आपके आया।
सुनकर गुरुवर हो मूर्छित गिर जाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये॥ १२॥

देख गुरु की दशा शिष्य घबराया।
त्वरित गति से पास तोते के आया।
कही बात सब गुरु को मूर्छित पाया।
समझ गया मैं गुरु ने मुझे जगाया।
ज्ञान मिल गया निज को मुक्त बनाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये॥ १३॥

शुक से मिलकर शिष्य पुनः वहाँ आया।
अपने गुरु को स्वस्थ देख हर्षाया।
गुरुवर मैंने शुक को हाल बताया।
श्रद्धा से उसने अपना शीश झुकाया।
बात बताकर लौट यहाँ हम आये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये॥ १४॥

सेठ भवन से आंगन में है आया।
देखा जो पिंजरा शुक को मुर्दा पाया।
हाय मुनि ने मुझे बहुत समझाया।
लेकिन मैं नादान समझ ना पाया।
देख तोते को सेठ खड़ा पछताये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये॥ १५॥

खोल के पिंजर शुक को बाहर निकाला।
घर के बाहर उसे सड़क पर डाला।
पूरे घर का वह बना था ताला।
उसके कारण रखा नहीं रखवाला।
खाली पिंजर देख सेठ दुःख पाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये॥ १६॥

कहा गुरु ने मुक्ति शुक ने पा ली।
जाकर देखो पिंजर पड़ा है खाली।
देख तोते को झूमे वृक्ष की डाली।
दुःखी हो रहा सिर्फ भवन का माली।
सत्वरता से शिष्य सेठ घर आये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ॥ १७ ॥

मत्थएण वंदामी गूंज उठा स्वर प्यारा।
हँसकर शिष्य ने दया पालो उच्चारा।
गुरु कृपा से सुधरा जन्म हमारा।
शुक के मुख से निकले जय जयकारा।
सच्चे गुरु ही मुक्ति पथ बतलाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ॥ १८ ॥

जैसे शुक ने निज को मुक्त कराया।
नर भव पाकर तुमने क्या है पाया।
घर गृहस्थी में निज को नित उलझाया।
ले लो छुट्टी समय निकट है आया।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' हर्षाये।
गुमा दिया तो पुनः हाथ ना आये ॥ १९ ॥



९ | दरवाजा क्यों ?

[तर्ज—लावणी]

मत बने मस्त तू धन मद माही प्यारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।।

एक सेठ गुणपाल ग्राम से आया।
महानगर में आकर कार्य जमाया।
अन्याय न्याय नहीं गिने करे मन चाया।
पाप कर्म से उसने द्रव्य कमाया।
पेट फूल गया अतुलित द्रव्य कमा रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। १ ।।

कोई धर्म ध्यान की कहे नहीं मन भावे।
उलटा वह उसको गहरी डाट पिलावे।
धर्म ध्यान करने से क्या हो जावे।
जो खूब कमावे वो ही मौज उड़ावे।
ना समझे एक भी समझावे कई आ रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। २ ।।

एक समय यह बात सेठ मन भाई।
मैं भवन बनाऊँ देखे सब जन आई।
सोचा और कारीगर लिए बुलाई।
करे भवन तैयार नक्शा समझाई।
नहीं कमी द्रव्य की अतुलित कोष हमारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ३ ।।

चन्द दिनों में भवन खड़ा हो जावे।
सुन के प्रशंसा फूला नहीं समावे।
मिलने वाले को पकड़ हाथ ले जावे।
कोई कमी रही तो आप ही उसे बतावे।
वह करे अहम की बात भवन दिखला रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ४ ।।

कक्ष भवन में बड़े-बड़े बनवाये।
झाली-झरोखे, बेल-बूँटे खुदवाये।
चन्दन के किवाड़ सुरभि फैलाये।
तरण ताल भी उसने हैं बनवाये।
चौक में पानी बरसा रहे फव्वारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ५ ।।

बुलाके पण्डित शुभ मुहूर्त निकलाया।
परिजनों को उत्तम भोज खिलाया।
गंगाजल से उसको साफ कराया।
परिवार संग अब रहवास कराया।
देख भवन को कुप्पा हुआ वहां रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ६ ।।

लेने गोचरी एक दिन मुनिवर आये।
सोचे सेठ यह भवन इन्हें दिखलाये।
ये मुनिवर तो ग्राम-नगर में जाये।
ऐसा भवन क्या देख कभी ये पाये।
धन्य भाग हे मुनिवर आप पधारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ७ ।।

व्याख्यानों में होगी प्रशंसा भारी।
भवन सेठ का बना बड़ा गुलजारी।
जगह-जगह पर जाये आप पधारी।
रचना भवन की दिखलाऊं मैं सारी।
यह सोच सेठ कहे नमन मेरा स्वीकारें।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ८ ।।

आप आने से जागा पुण्य हमारा।
गोचरी से पहले भवन देखलें सारा।
यह बैठक, यह शयन कक्ष है प्यारा।
उधर रसोई घर सबसे है न्यारा।
सोते सोते देखलो नभ के तारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। ९ ।।

एक एक कर कक्ष सभी दिखलाये।
मंद मंद मुनिवर मन में मुस्काये।
कुछ और रह गया हो तो वह बताये।
समय हो रहा हम भी जल्दी जाये।
मन ही मन में मुनिवर यह विचारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे ॥ १० ॥

कितनी आत्मा मुग्ध बनी जग माँही।
मृत्यु की चिन्ता इसके मन में नाहीं।
समझ रहा मैं अजर-अमर हूं यहाँ ही।
यही सोचकर रहा दर्प हैं छाई।
देख सेठ को मुनिवर हँसे निहारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे ॥ ११ ॥

चुप रहे मुनिवर मुख से कुछ ना बोले।
सिर लगे हिलाने अब वे होले होले।
बन्द जुबा को अब तो मुनिवर खोले।
आप चाहें तो पुनः भवन को जोहलें।
कमी अगर तो दे फिर से तुड़वारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे ॥ १२ ॥

मुनिवर बोले-भवन बना है आला।
पर एक बात में समझ न पाया लाला।
द्रव्य भवन पर बहुत खर्च कर डाला।
पर दरवाजा क्यों कर यह निकाला।
आये जाये बिन द्वार के कैसे यहाँ रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे ॥ १३ ॥

आने जाने के लिए द्वार बनवाया।
मुनिराज कहे तू रहस्य जान ना पाया।
जाना पड़ता सेठ उसे जो आया।
मृत्यु सत्य यह जान रह न पगलाया।
पुत्र-पौत्र कल घर से तुझे निकारे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे ॥ १४ ॥

सोचे सेठ मैं अब तक था भरमाया।
लूट-झूठ से मैंने द्रव्य कमाया।
कर्म बन्ध से नरक का पंथ बनाया।
झूठा यह जग झूठी जग की माया।
सोच सेठ का चेहरा उतर गया रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। १५ ।।

पाप कर्म को त्याग पुण्य अपनाऊँ।
धर्म कमाई में ही ध्यान लगाऊँ।
सत् संगति में जीवन यहाँ बिताऊँ।
खुली हवा में जाकर चित्त रमाऊँ।
जीवन में आया अब तो मोड़ नया रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। १६ ।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' बताये।
पुण्यवान को सद् शिक्षा नित भाये।
मोह माया को त्याग सत्य अपनाये।
वही आत्मा सुखी यहाँ बन जाये।
कथा श्रवण कर शुद्ध भाव अपना रे।
नहीं जाये साथ में इक पाई भी थारे।। १७ ।।



१० | मिश्र दृष्टि

[तर्ज—लावरणी]

जैन-अजैन सब सन्त एक हैं भाई।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ॥
आये नगर में सन्त महा गुणधारी।
श्रावक जा रहे दर्शन को दिल धारी।
मिला सेठ एक मिश्र दृष्टि उस वारी।
कहाँ जा रहे श्रावक ने उच्चारी।
मुनि दर्शन की हृदय भावना आई।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ॥ १ ॥
मिश्र दृष्टि कहे संग चलूं मैं तेरे।
जगी भावना दर्शन की मन मेरे।
मुनि मिथ्यात्वी बैठे डालकर घेरे।
उत्तर देना लगे पत्र के ढ़ेरे।
रुका सेठ फँस गया काम के मांही।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ॥ २ ॥
दर्शन करके श्रावक वापिस आया।
मिश्र दृष्टि ने उनको यह बतलाया।
जाता हूँ मैं समय अभी मिल पाया।
यह कहकर के उसने कदम बढ़ाया।
विहार कर गये बगिया से मुनिराई।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ॥ ३ ॥
नहीं वहाँ गुरु पंच महाव्रत धारी।
दिये दिखाई उसको वहाँ मठधारी।
देख उन्हें वह सोचे हृदय विचारी।
सन्त सन्त सब एक फरक दिया डारी।
मेरे लिए तो सभी बराबर भाई।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ॥ ४ ॥

इनने तज संसार वेश पलटाया।
मुझसे तो अच्छे भाव यह दिखलाया।
सत्य समझकर मन को भी समझाया।
सत् का पथ तो एक हृदय भरमाया।
हाथ जोड़कर नमन किया हर्षाई।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ।। ५ ।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' नित गाये।
सम्यक् दृष्टि की महत्ता को बतलाये।
मिथ्यात्व भाव को तजे वही सुख पाये।
मोक्षगामी वह जीवन यहाँ बनाये।
सत् संगति सन्तों से ही मिल पाई।
मिश्र दृष्टि यों कहे फरक कुछ नाहीं ।। ६ ।।



११ | मन के मनसूबे

[तर्ज—लावणी]

नर भव मिला अमूल्य बतावे ज्ञानी।
क्यों सटर पटर में खोवे तू जिन्दगानी।।
नव घाटी को पार किया दुःख पाई।
संग्रह कीनी अनन्त यहाँ पुण्याई।
भव सुर दुर्लभ आय कर के मांही।
चिन्तामणि यह रत्न ज्ञानी फरमाई।
कांच के बदले मत बेचे अज्ञानी।
क्यों सटर पटर में खोवे तू जिन्दगानी।। १ ।।
घर धन्धे का अन्त नहीं है आये।
कमी आयु में हर क्षण होती जाये।
यह वह करना रात दिवस मन भाये।
चिन्ता मरने की समझ नहीं क्यों पाये।
किसके भरोसे करे मूर्ख नादानी।
क्यों सटर पटर में खोवे तू जिन्दगानी।। २ ।।
विसलपुर में विष्णु कष्ट उठाये।
पूर्व भव में उसने पाप कमाये।
कोई उसको पुण्य की बात बताये।
सुनकर उसकी हंसी वह उड़ाये।
निश दिन बोले सबसे वह कटु वाणी।
क्यों सटर पटर में खोवे तू जिन्दगानी।। ३ ।।
करे परिश्रम खूब मिले ना पाई।
अन्तराय का उदय गया था आई।
जो भी करता काम होय उल्टा ही।
मुख से प्रभु का नाम निकलता ना हीं।
लिखे जैन पर जाने ना जिनवाणी।
क्यों सटर पटर में खोवे तू जिन्दगानी।। ४ ।।

मन में मनसूबे निश दिन वह बनावे।
किन्तु एक भी सफल नहीं हो पावे।
सोचा उसने जितना यहाँ कमाऊँ।
भूखा रहकर आधा नित्य बचाऊँ।
कभी सत्तू कभी खाता वह गुड़ धानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ।। ५ ।।

रात होते ही धन का जोड़ लगावे।
कुछ वर्षों में रुपये सौ बन जावे।
लगा सीने से घर मांही इठलावे।
क्या करूँ मैं इनका रह रह प्रश्न उठावे।
मन ही मन में करता खींचातानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ।। ६ ।।

सोचे घी का टीन करके क्रय लाऊँ।
रह लिया भूखा माल चकाचक खाऊँ।
गया हाट पर बोला घृत मैं चाहूँ।
जल्दी दे दे मैं घर को ले जाऊँ।
जिह्वा से गिरने लग गया उसके पानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ।। ७ ।।

चूल्हे ऊपर चढ़ गई अब तो कढ़ाई।
खुशी खुशी में उसने आग जलाई।
घृत दीना है पूर हृदय हरषाई।
गरम हुआ घृत सौरभ अब है छाई।
है किन चीजों के बनने में आसानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ।। ८ ।।

लड्डू पेड़े कलाकन्द मैं खाऊँ।
गोल गोल रसगुल्ले खूब बनाऊँ।
भूखे पेट की सारी भूख मिटाऊँ।
मालपुए की थाली एक सजाऊँ।
फीणी जलेबी मोतीचूर खुरमानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ।। ९ ।।

घी का धुआं चहुं ओर है छाया।
बने चीज क्या सोच नहीं वह पाया।
जली लकड़ियाँ घृत भी वहाँ जलाया।
अन्तिम क्षण तक नहीं सोच वह पाया।
चूल्हे की पूरी करे वह निगरानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ।। १० ।।

रहे देखता घृत सारा जल जावे।
खाली पीपा देख हृदय दुःख पावे।
नैन बन्द कर गर्दन वह हिलावे।
सोचे लेकिन सोच नहीं है पावे।
होगी ऐसी दशा नहीं थी जानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी ॥ ११ ॥

यह जीव पूर्व से आयु घृत है लाया।
सोचो 'सोहन' तुमने क्या है बनाया?
संवर सामायिक अगर नहीं कर पाया।
तो मुर्दा बनकर जीवन यह जलाया।
प्राज्ञ प्रसादे कविता बनी कहानी।
क्यों सटर पटर में खोये तू जिन्दगानी।

इकतालीस दो सहस्र, फूलिया कला मंझार।
फागुन बुद दशमी गुरु, काव्य कथा तैयार ॥ १२ ॥



१२ | पाप छिपाये ना छिपे

[तर्ज—लावणी]

जग में अघ नहीं छिपता कभी छिपाये ।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ।।

सुमेरपुरी में रोशन रहे धनवाला ।
खूब चले व्यापार नियम शुभपाला ।
तोल माप में करे न गड़बड़ झाला ।
शुद्ध आय का ध्यान रखे वह लाला ।
पल भर ग्राहक से फुर्सत नहीं पाये ।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ।। १ ।।

सुन्दर पत्नी पार्वती है नारी ।
है गुण की भण्डार कमी इक भारी ।
पेट पूजा में सबसे रहे अगारी ।
क्या करे वह उसे लगती भूख करारी ।
पति से पहले अपना भोग लगाये ।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ।। २ ।।

इक दिन वहाँ पर पण्डित कहीं से आया ।
कर कथा का वाचन उसने नाम कमाया ।
कर कथा श्रवण हर श्रोता वहाँ हर्षाया ।
पार्वती का मन भी अब ललचाया ।
भरी सभा में पण्डित कथा सुनाये ।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ।। ३ ।।

पति में ही सब तीर्थ वह बतलाये ।
सर्वस्व पति को मान वह सुख पाये ।
सती पति को खिला बाद में खाये ।
पहले खाये पापीष्टनी कहलाये ।
मन पार्वती का सुनकर के दुःख पाये ।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ।। ४ ।।

वह घर में आकर बैठी चिन्ता मांही।
मैं धर्म पालूं या पेट समझ ना पाई।
उसी समय वहाँ नाइन चलकर आई।
कहे पार्वती-तुम मुझको दो बतलाई।
नाइन बोली क्या बात हुई बतलाये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये।। ५ ।।

पार्वती ने उसको बात बताई।
सुनकर मैं तो कथा बहुत घबराई।
बस इतनी सी बात में चिन्ता लाई।
भोली हो तुम देऊँ मैं समझाई।
मेरे पास उपाय नहीं घबराये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये।। ६ ।।

पंडित जी ने कहा रोटी नहीं खाये।
तो लड्डू पेड़े से ही काम चलाये।
सास ननंद से पूछ के भोग लगाये।
वे नहीं अगर तो पास देहरी के जाये।
पूछ के खालो दोष सभी टल जाये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये।। ७ ।।

सुनकर नाइन की बात वह हर्षाई।
बहिन भला करने तू मेरा आई।
उठकर उसने लड्डू लिए बनाई।
भूख लगी है कुछ तो मैं लूँ खाई।
आज्ञा लेने पास देहरी के आये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये।। ८ ।।

सुन रे देहरिया बन्दी, मेरे सास है ना ननंदी।
तेरी ही आज्ञा पाऊँ, पेट भर लड्डू खाऊँ।।

प्रश्न स्वयं कर उत्तर भी वह देवे।
खाले-खाले अपने से वह कहवे।
झट उठा के लड्डू मुख में वह धर लेवे।
हाथ पेट पर फिरा चैन से सोवे।
पति आते ही भोजन गर्म बनाये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये।। ९ ।।

लाला बोले-क्या नहीं भूख सताये।
पार्वती कहे-प्रथम आप ही पायें।
बिना आपके रोटी कैसे खाये?

पहले खाऊँ तो पाप मुझे लग जाये।
तुमसी पत्नी सभी पति यहाँ पाये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ॥ १० ॥

पार्वती का क्रम यह चलता जाये।
घर एक दिवस को लाला जल्दी आये।
पार्वती देहरी को मंत्र सुनाये।
लेकर के आज्ञा अपने भोग लगाये।
विस्मय से लाला लौट हाट को जाये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ॥ ११ ॥

अगले दिन भी लाला जल्दी आये।
पहले दिन सा दृश्य वहाँ वे पाये।
पार्वती ने लड्डू वहाँ बनाये।
पूछ देहरी से लपक-लपक कर खाये।
लाला को आया रोष लट्ठ ले आये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ॥ १२ ॥

सुन-सुन रे भैया आले, मेरे नहीं ससुर व साले।
तेरी आज्ञा मैं पाऊँ, पत्नी के लट्ठ लगाऊँ ॥

हाँ-हाँ मत भाई इसमें देर लगाओ।
करके उत्तम काम लाभ ही पाओ।
जितने चाहो तुम उतने लट्ठ जमाओ।
मारो तब तक जब तक थक ना जाओ।
ऐसे मौके बार-बार नहीं आये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ॥ १३ ॥

यह सुनकर के पार्वती घबराये।
लाला ने उसकी पीठ पे लट्ठ जमाये।
दो लट्ठ पड़ते ही चित्त वह हो जाये।
क्षमा मांग कर पाँवों में गिर जाये।
प्राज्ञ प्रसादे 'मुनि सोहन' बतलाये।
समय आने पर प्रकट पाप हो जाये ॥ १४ ॥



१३ | सोना मत रे भाई

[तर्ज—लावणी]

निश दिन ज्ञानी जग को रहे चेताई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥

अमृतपुर के अमृत सेन महाराया।
करे प्रजा से प्यार हृदय हरसाया।
महाराज की शरण चला जो आया।
सन्त गुणीजन ने वहाँ आदर पाया।
महारानी विमला विमल भाव मन लाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ १॥

उसी नगर में विप्रदत्त इक रहते।
विद्या में निष्णात सभी जन कहते।
अशुभ कर्म से भूख गरीबी सहते।
विप्राइन के निशदिन आंसू बहते।
नहीं भीख में मिलती उसको पाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ २॥

होकर जीवन से तंग हृदय में धारी।
इच्छा होती नगर देऊं यह छारी।
घर में आकर कहे सुनो मम नारी।
जाऊँगा परदेश हृदय यह धारी।
जीवन की हर घड़ी बनी दुःखदाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ ३॥

यह कहकर के घर से बाहर आया।
अपशकुन देखकर मन उसका चकराया।
वापिस लौटूं मन में भाव बनाया।
फिर मन में उसके भाव अनोखा आया।
करूं परीक्षा जग की चित में लाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ ४॥

त्यागी सन्त का उसने वेश बनाया।
तरु के नीचे आसन वहां लगाया।
दर्शन करने जो जो भी नर आया।
धन मेवा मिष्ठान साथ में लाया।
छू कर उनने गर्दन वहाँ हिलाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। ५ ।।

सारे शहर में कीर्ति सन्त की छाई।
करने को दर्शन जनता भी पगलाई।
दर्शन करके खुशी सभी ने पाई।
देख भीड़ को लोग रहे चकराई।
बात महिपति के कानों में आई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। ६ ।।

नृप ने मंत्री को सब बात बताई।
महासन्त को लाये महल के मांही।
मंत्री बोला उचित बात फरमाई।
त्यागी सन्त वे यहाँ आने के नाहीं।
अर्थदास ही राजमहल चित लाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। ७ ।।

चलकर मैं ही दर्शन करके आऊँ।
अपने संग में अन्तःपुर ले जऊँ।
करके दर्शन जीवन धन्य बनाऊँ।
विप्र नारी सोचे मैं पुण्य कमाऊँ।
सबकी भांति वह भी आ हर्षाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। ८ ।।

जो भी दर्शन करे धन्य हो जाये।
पति गये परदेश हृदय में लाये।
उसी वक्त में भूप वहाँ पर आये।
देख सन्त की चर्या शीश नवाये।
भाग्य प्रबल जो लीने दर्शन पाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। ९ ।।

रत्न थाल नृप अपने संग में लाया।
रखकर चरणों में महिपति यह दरसाया।
पावन चरणों में तुच्छ भेंट रख पाया।
किन्तु सन्त ने उसको परे हटाया।
देख सन्त का त्याग खुशी मन छाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ १०॥

सब धन के खातिर दौड़ रहे जग मांही।
सन्त धन्य है त्याग किया ले नांहीं।
हाथ जोड़ कर नृप ने अर्ज सुनाई।
क्या मेरे लिए उपदेश देवें फरमाई।
सन्त कहे तुम सुनो अरे नर राई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ ११॥

सुनकर नृप उपदेश महल में आया।
जागृत भव में सोना नहीं बताया।
बात सन्त की समझ नहीं मैं पाया।
क्या मतलब है अन्तर ध्यान लगाया।
रहा सोचता नींद न उसको आई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ १२॥

संतवेश तज विप्र पुनः घर आया।
नारी बोली क्या विदेश नहीं भाया।
अपशकुन हो गया विप्र ने उसे बताया।
इसीलिए मैं वापिस घर पर आया।
कल आते तो बनती बात सुखदाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई॥ १३॥

वह बोली इक महासंत यहां आये।
जो करले दर्शन वह दारिद्र नशाये।
ऐसे त्यागी नजर नहीं नित आये।
मैं ही था वह विप्र उसे बतलाये।
सारी घटना उसको वहीं सुनाई
जागृत भव में सोना म। रे भाई॥ १४॥

कितनी कीमती भेंट सामने आई।
जीवन भर का दुःख जात विरलाई।
अजी आपने ध्यान दिया क्यों नाहीं।
कहीं ना जाना पड़ता द्रव्य के ताई।
विप्र कहे अब सुनले ध्यान लगाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। १५ ।।

उस समय संत का वेश लिया तन धारी।
क्यों संत होय कर भेंट करू स्वीकारी।
धन से लगे कलंक संत को भारी।
जीवन बिगड़े पैंठ उड़े यहाँ सारी।
कंचन को मिट्टी समझ संत छिटकाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। १६ ।।

नृप उधर रात को नींद नहीं ले पाये।
सूर्योदय होते ही सभा में आये।
विद्वान नगर के सार गये बुलाये।
नृप ने मन के भाव उन्हें बतलाये।
मतलब इसका दो मुझको समझाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। १७ ।।

जागृत भव में सोना क्या समझाये।
सब बोले हमको अर्थ न इसका आये।
उसी समय में विप्र वहाँ आ जाये।
बोला नर भव जागृत भव कहलाये।
उत्तम भव यह सभी पंथ रहे गाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। १८ ।।

अर्थ समझ कर नृप मन में हर्षाया।
खूब द्रव्य दे विप्र को गेह पहुँचाया।
अब तक मैंने निज को रखा सुलाया।
करू आतम कल्याण हृदय में भाया।
राजकाज दूं सुत को मैं संभलाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई।। १९ ।।

बुला पुत्र को राज्य दिया संभलाई।
भजन करे एकान्त स्थान में जाई।
नरभव को मैं लेऊँ सफल बनाई।
मोह माया को दी उसने छिटकाई।
यूं ही कितनी उमर यहाँ गंवाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई ॥ २० ॥

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' बताये।
भव्य जीव हो सदा ध्यान में लाये।
धर्म ध्यान कर जीवन सफल बनाये।
अपना आत्मा ऊँचा नित्य उठाये।
नित देव गुरु व धर्म करे सहाई।
जागृत भव में सोना मत रे भाई ॥ २१ ॥





१४ अविद्या

महाराज भोज मन माही ऐसा लाये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये।।

सरस्वती का पुत्र भोज महाराया।
धारा नगरी में उनने नियम बनाया।
हर अनपढ़ को जाये आज पढ़ाया।
कवियों को नगरी में जाय बसाया।
विद्या दान में नृप धन को लगवाये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये।। १ ।।

विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्ख सपुराद् बहिरस्तुमे।
कुम्भकारोऽपियो विद्वान सतिष्ठतु पुरे मम।।

पण्डित लक्ष्मीधर चला नगर में आया।
राजा भोज को अपना ज्ञान बताया।
फिर बोला-ले परिवार शरण में आया।
मंत्री को नृप ने अपने पास बुलाया।
उत्तम घर दे इनको आप बसायें।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये।। २ ।।

स्वयं मंत्री ने जाकर खोज कराई।
नहीं नगर में मूरख दिया दिखाई।
सेवक ने कान में आकर बात बताई।
मंत्री बोला-दो उसको आप हटाई।
आदेश आप जाकर के अभी सुनाये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये।। ३ ।।

जुलाहा बस्ती में चल सेवक आया।
एक जुलाहे को आदेश थमाया।
लख मंत्री का आदेश वह घबराया।
घर से सीधा राजमहल में आया।
राजा भोज को अपनी बात बताये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये ॥ ४ ॥

मैं निर्धनता के कारण पढ़ नहीं पाया।
वस्त्र बनाने में ही वक्त गुमाया।
कविता करना अधिक नहीं है आया।
सत्संगति से काव्य भाव मन आया।
महामंत्री मुझको अज्ञ बताये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये ॥ ५ ॥

काव्यं करोमि नही चारु तरं करोमि,
यत्नात्करोमि यदि चारु तरं करोमि।
भूपाल मौलि मापि मण्डित पाद पीठः
हे साहसाङ्क कवयामि वयामी यामि ॥

दीन हीन मानव के दुःख को टाले।
झुकते भूपों के मस्तक चरणों वाले।
कवियों को अपने हृदय लगाने वाले।
साक्षरता का नाद गुंजाने वाले।
मुझसे सुन्दर श्लोक नहीं बन पाये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये ॥ ६ ॥

सुन्दरता मेरे भावों में नहीं आये।
क्या करना है आप ही मुझे बतायें।
कविता करे या कपड़ा यहाँ बनाये।
आप कहें तो नगर त्याग कर जाये।
भोजराज सुन श्लोक खुशी मन लायें।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये ॥ ७ ॥

सुन्दर तेरा काव्य मेरे मन भाया।
मंत्री को अपना निर्णय त्वरित सुनाया।
पुरस्कार का हक इसने हैं पाया।
हर अक्षर पर लक्ष रुपया दिलाया।
नगर त्याग कर आप नहीं अब जाये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये॥ ८॥

चला जुलाहा हर्षित घर पर आये।
मंत्री को कोई मूर्ख नहीं मिल पाये।
अनपढ़ कोई नज़र नहीं जब आये।
प्रासाद नया पण्डित के लिए बनाये।
प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' दरसाये।
है अविद्या कलंक यहाँ मिट जाये॥ ९॥

श्लोक

अद्य धारा सदा धारा सदा लम्बा सरस्वती,
पण्डिता मण्डिता सर्वे भोजराजे महिस्थिते।
अद्य धारा निरा धारा निरालम्बा सरस्वती,
पण्डिता खण्डिता सर्वे भोजराज दिवंगते॥



१५ | असली और नकली

[तर्ज—लावणी]

असली नकली का भेद नहीं पहचाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ॥

अज्ञान अवस्था जब तक है घट मांही।
तब तक जँचती उसके दिल में नांहीं।
कई तरह से दे उसको समझाई।
फिर भी मन में जमे एक भी नाहीं।
असली की निंदा करके आनन्द जाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ॥ १ ॥

पुर वसन्त में जौहरी धन्ना नामी।
वह करे बहुत व्यापार नहीं है खामी।
प्रमुख जौहरी का पद लिया है पामी।
नम्र-विचक्षण इज्जत है गुण धामी।
अच्छा चलता काम लोग भी माने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ॥ २ ॥

करता कर से दान सदा दिल धर कर।
कर फैलाते निर्धन नित आ आ कर।
समय समय पर दीन दुःखी को लखकर।
गुप्तदान भी करे सदा हर्षाकर।
धन से उसके भरे हुए तहखाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ॥ ३ ॥

एक दिवस जौहरी के मन में आई।
मैं मोती विक्रय करूँ शहर ले जाई।
स्वर्ण मंजूषा धरी थैले के मांही।
चला प्रसन्न वह पहुँचा वन में जाही।
तेज गर्मी से लग गई प्यास सताने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ॥ ४ ॥

कूप देखकर उसका मन हर्षाया।
दूर थैली धर जल के हाथ लगाया।
पीकर पानी उसने पाँव बढ़ाया।
दूर जाने पर ध्यान थैली का आया।
भूल हो गई क्यों मुझ से अनजाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। ५ ।।

पीछे से किश्ती एक वहाँ पर आई।
थैली में मंजूषा देख वह हर्षाई।
हाथ डालकर मंजूषा बाहर लाई।
खोल उसे वह मंद मंद मुस्काई।
कच्ची गूंजा के भरे हुए हैं दाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। ६ ।।

जैसी मिली वैसी ही लेकर आया।
कच्ची पक्की का ध्यान नहीं रख पाया।
पक्की गूंजे बहुत समझ नहीं पाया।
इतने में चलकर सेठ वहाँ फिर आया।
पक्की चिरमी को आप नहीं पहचाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। ७ ।।

ऐसे गूंजे क्यों तुम फिरो उठाये।
पक्के चाहो तो साथ मेरे आ जायें।
जितने चाहे गूंजे आप ले जायें।
पौधे उनके बहुत चलो दिखलायें।
भरो गूंजों से अपने सभी खजाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। ८ ।।

सुनकर उसकी बात जोहरी मुस्काया।
ये मोती है उसको वहाँ बताया।
लाखों की कीमत उनको समझाया।
कुछ भी कीराती को न समझ में आया।
लेकर थैली जोहरी लगा है जाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। ९ ।।

नहीं आये ये काम कहूं मैं सच्ची।
सभी चिरमिया थैली में हैं कच्ची।
समझो मेरी बात नहीं मैं बच्ची।
अरे सेठ ले जाओ अच्छी अच्छी।
भोला सेठ नहीं पकी हुई पहचाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। १० ।।

भोली कीराती मुझको भेद बतावे।
क्या असली है, इसे कौन समझावे।
एक श्लोक में ज्ञानी जन बतलावे।
असली को जाने वही सुखी बन जावे।
गूंजे असली के नहीं जहाँ तक गाने।
वहां तक नकली को उचित हृदय से माने ।। ११ ।।

श्लोक

न वेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्ण सन्त सदा निन्दति नाति चित्रम्।
यथा कीराती करी कुंभ जातां मुक्तां परित्यज्य विभर्ति गुंजाम ।।

प्राज्ञ प्रसादे 'सोहन मुनि' सुनावे।
गुण नहीं जाने वे ही अवगुण गावे।
असली मुक्ता भीलनी है फिकवावे।
पके गूंजा में मन उसका भरमावे।
सच्चा जौहरी असली नकली जाने।
वहाँ तक नकली को उचित हृदय से माने ।। १२ ।।



१६ | सपना है संसार

संसार स्वप्न वत समझ अरे भव प्राणी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ।।

एक नगर में श्रेष्ठी शान्ति महादानी।
समझे धर्म का मर्म कहे सब ज्ञानी।
कहते उसको लोग कर्ण सा दानी।
लक्ष्मी का ले रहा लाभ सदा लासानी।
उसकी बोली लगती सबको सुहानी।
क्यों इसमें फंसकर खोता है जिन्दगानी ।। १ ।।

घर में सुन्दर पत्नी पतिव्रत धारी।
करे नित्य शुभ काम बनी व्यवहारी।
घर आये का मान रखे गुणधारी।
कहे नगर के लोग धन्य वह नारी।
धर्म ध्यान में रहे सदा अगवानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ।। २ ।।

चले बहुत व्यापार सेठ हर्षाये।
नित बड़े-बड़े व्यापारी आये जाये।
स्वागत में श्रेष्ठी पलकें रहे बिछाये।
निर्धन भी सम्मान वहाँ आ पाये।
सब देख स्नेह व्यवहार करें हैरानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ।। ३ ।।

अमर नाम का सुत उसने है पाया।
मन उसने पढ़ने से सदा चुराया।
देख पुत्र को सेठ हृदय दुःख पाया।
इसी चिन्ता में वृद्ध जल्दी हो आया।
निशदिन चिन्ता करे वहाँ सेठानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ।। ४ ।।

धर्म ध्यान में श्रेष्ठी समय बिताये।
शुभ योग सभी नहीं पुण्य बिना मिल पाये।
किसी बात की कमी नजर नहीं आये।
देखे जब भी पुत्र नयन भर जाये।
माता सोचे कब देखूं बहुरानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ॥ ५ ॥

यों दिवस बीतते समय बीत है जाये।
तात मात दोनों ही रह नहीं पाये।
अमर अपना व्यापार समझ नहीं पाये।
सम्पत्ति सारी लोग हड़प ही जाये।
कुछ वर्षों में बदली सभी कहानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ॥ ६ ॥

सगे सम्बन्धी आँखें लगे चुराने।
कल के अपने आज नहीं पहचाने।
दीन दशा में दिन वह लगा बिताने।
जिसने खाया नमक नहीं वे जाने।
अब दुनियां उसको लगती नहीं सुहानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ॥ ७ ॥

कौन जाने, कब समय कैसा आ जाये।
बनते बिगड़ते देर नहीं लग पाये।
नहीं स्वयं पर मनुज कभी इतराये।
खड़ी फसल पर कब ओले गिर जाये।
धन यौवन पर गर्व करे अज्ञानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ॥ ८ ॥

जेष्ठ माह में गर्मी बहुत सताये।
कूप किनारे अमर जाके सो जावे।
निद्रा में उसको स्वप्न एक यह आये।
शादी करके नारी घर में लाये।
सपने में ही पीया कूप का पानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ॥ ९ ॥

मित्रों से उसने मन की बात बताई।
निर्धन घर की लड़की बहू बनाई।
रौनक घर में देने लगी दिखाई।
कुछ ही दिनों में पुत्र लिया है पाई।
मिलने को आये सुत के नाना-नानी।
क्यों इसमें फँसकर खोता है जिन्दगानी ॥ १० ॥

यह सब सपने में ही होता जाता।
सपने में ही अमर रहा हर्षाता।
सुत के संग में सोया खाट पर पाता।
सपने में ही सुत के लाड लड़ाता।
थोड़ा खिसको बोली है बहुरानी।
क्यों फँसकर इसमें खोता है जिन्दगानी ।। ११ ।।

यह सुन के खिसक अमर अब जाये।
गिरा कूप में धम्म चोट वह खाये।
लगी उपल की चोट माथे में आये।
नहीं था गहरा कूप अतः बच जाये।
इसीलिए तो कहते जग में ज्ञानी।
क्यों फँसकर इसमें खोता है जिन्दगानी ।। १२ ।।

स्वप्ना केरी सुन्दरी ले नाखे अन्ध कूप।
प्रभु जाने हो कौन गत, जो सेवे मद रूप ।।

पानी में गिरकर अब तो वह पछताये।
सपने की नारी कूप मांही गिरवाये।
सच्ची होती तो दशा बिगड़ ही जाये।
नहीं भूलकर गृहस्थी अब तो बसाये।
मुझे निकाले कूप से कोई ज्ञानी।
क्यों फंसकर इसमें खोता है जिन्दगानी ।। १३ ।।

सुनकर के आवाज कई जन आये।
गिर गये कैसे हमको जरा बताये।
सपना देखा संभल नहीं हम पाये।
अब तो गुरु ही हमको राह दिखाये।
प्राज्ञ प्रसादे राह 'सोहन' ने जानी।
क्यों फँसकर इसमें खोता है जिन्दगानी ।। १४ ।।

स्पप्न सरीखी दुनियां इसको जानो।
जग को देखो निज को तुम पहचानो।
अपना कोई नहीं जगत में मानो।
मत गिरो पंक में जागो रे पुण्यवानो।
जान बूझ जो फँसे करे नादानी।
क्यों फँसकर इसमें खोता है जिन्दगानी ।। १५ ।।

